
6



काशी में जब ब्रह्मदत्त का राज्य था, तब भगवान बोधिसत्व एक बार एक मरघट में कुत्ते के रूप में जन्मे और सैकड़ों की संख्या बाले एक श्वान दल के अगुआ हो गए। एक दिन राजा सफेद घोड़ों की बग्गी पर चढ़ कर सैर करने निकला और सूरज डूबते-डूबते किले में वापस आ गया।

वापस आने के बाद राजा तो किले में चला गया और नौकरों ने घोड़ों को खोल कर बग्गी वहीं बाहर छोड़ दी। रात में पानी बरसा और बग्गी बिलकुल भीग गई। यही नहीं, राज-महल के कुत्ते निकले और बग्गी में लगे चमड़ों के सभी सामान नोच-नोच कर खा गए।

दूसरे दिन बग्गी वालों ने राजा से शिकायत की-"हुजूर, रात में कुत्ते आए और बग्गी के सारे सामान खा गए।"

नौकरों की यह बात सुनते ही राजा गुस्से से भर गया और बोला-"ये कुते बड़े अमागे हैं। जहाँ दीख पड़ें, मार डालो।"

राजा का हुक्म होते ही सारे काशी-राज्य में कुत्तों की हत्या शुरू हो गई। जहाँ-कहीं कुत्ते दीख पड़ते, चण्डाल उन्हें निर्दयता से मार डालते थे।

कुत्तों की यह सामूहिक हत्या देख कर राज्य के बचे-खुचे कुत्ते मरघट में भगवान बोधिसत्व के पास जमा हुए।

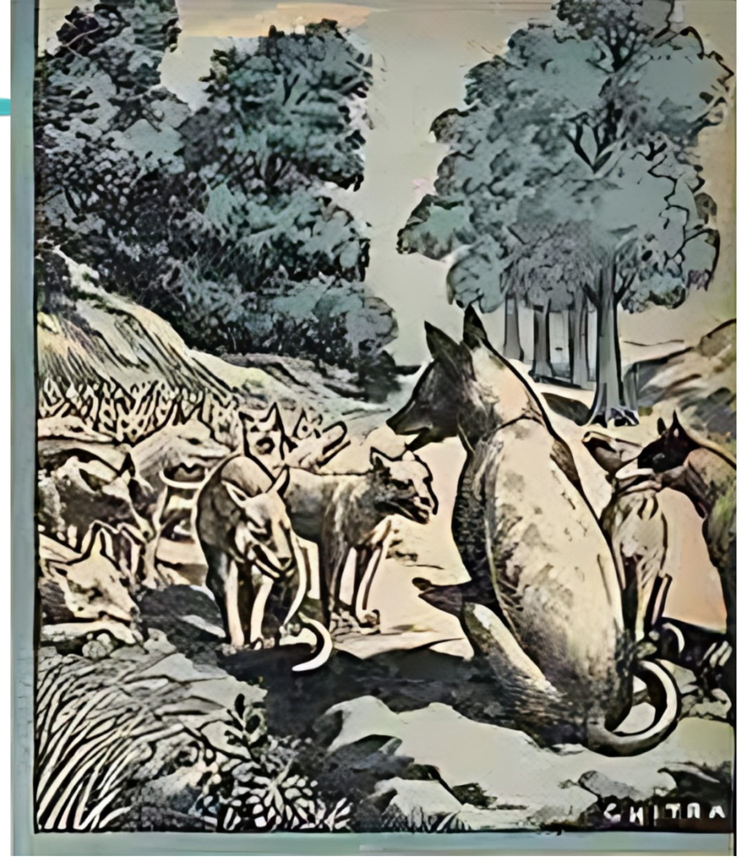
कुत्तों का जमावड़ा देख कर बोधिसत्व ने बड़ी आतुरता से पूछा-"क्या है भाई ? तुम लोग यों दौड़ कर क्यों जमा हुए हो यहाँ ?"

"भगवान, अब और क्या है ? हमारी जाति के नाश की घड़ी आन पहुँची है। राजा की बग्गी की रास-जोती कुछ कुत्ते

खा गए हैं। यह सुनते ही गुस्से से आगबगूला होकर राजा ने कुत्तों के नाश की आज्ञा दे दी है।" कुत्तों ने निवेदन किया।

तब बोधिसत्व ने ऐसा सोचा-"बाहर के कुत्ते तो किसी प्रकार राज-महल में घुस नहीं सकते। क्योंकि वहाँ तो रात दिन पहरा पड़ता ही रहता है। फिर राज महल के कुत्तों के सिवा यह काम और कौन कर सकता है ? यही बात ठीक है ! जिन कुत्तों ने यह अपराध किया, वे तो मजे में हैं; पर हमारे ये निर्दोष कुत्ते बिना कारण ही मारे जा रहे हैं। अब चुप रहने से काम कैसे चलेगा ? अपराधी कुत्तों का पता लगा कर राजा को समझाना और उससे इन्साफ कराना जरूरी है। नहीं तो व्यर्थ ही हमारी जाति का नाश हो जाएगा।"

यों सोच कर बोधिसत्व ने अपने भाइयों से कहा-"भाइयो, तुम लोग जरा भी मत डरो। तुम सबों की रक्षा का भार अब मेरे ऊपर है। मैं राजा के पास जाता हूँ। मेरे आने तक तुम लोग यहीं रहना।"



अपने दल को समझा-बुझा कर बोधिसत्व सोचता हुआ चल पड़ा- "धर्म की जय हो ! राजा न्याय से राज्य करे।"

यों एक कुत्ते को राज-महल में जाते देख कर भी किसी पहरेदार ने उसे एक डेला उठा कर नहीं मारा और न गुस्सा ही किया।

वहाँ---

कुत्तों की हत्या का फर्मान निकाल कर राजा राज सभा में आया और न्यायासन पर विराजमान हो गया। उसी समय राजा के सिंहासन के नीचे से निकल कर कुत्ता-



"क्या आप उन कुत्तों का पता बता सकते हैं ?" बोधिसत्व ने फिर नम्रता से पूछा।

"नहीं, सो तो मैं नहीं जानता!" राजा ने सङ्कोच से कहा।

तब बोधिसत्व ने गम्भीर होकर पूछा- "जब अपराधियों का पता नहीं है, तब निरापराधों की हत्या करना क्या उचित है ? क्या यही धर्म है ?"

राजा ने कहा-"मेरी बग्गी के सामान नष्ट हो गए। इसीलिए मैंने वैसा हुक्म दिया है।"

बोधिसत्व ने फिर पूछा-"महाराज, तो आपके नौकर सभी कुत्तों को मार डालेंगे या कुछ को छोड़ेंगे भी?"

"नहीं, सभी को नहीं मारेंगे। राज-महल के उत्तम कुत्तों पर वे हाथ नहीं लगाएँगे।" राजा ने जवाब दिया।

इस पर बोधिसत्व यों बोला- "महाराज, अभी तो आपने कहा कि सभी कुत्तों के नाश का हुक्म दिया है। फिर राज-महल के कुत्तों के प्रति आपका यह पक्षपात क्यों ? इससे तो साफ जाहिर होता है कि आपमें चार दुर्गुण भरे हैं-पक्षपात, द्वेष, अविवेक तथा भय। ये

रूपधारी को बोधिसत्व राजा के सामने खड़ा हो गया। यह देख कर राजा के नौकर उस कुत्ते को पकड़ने दौड़े। लेकिन राजा ने उन्हें रोक दिया।

बोधिसत्व राजा को प्रणाम करके बोला-"आपने ही कुत्तों को मार डालने का हुक्म दिया है?"

"हाँ, मैंने ही हुक्म दिया है।" राजा ने जवाब दिया।

"महाराज ! उनका अपराध क्या है?"

"कुत्तों ने हमारी बग्गी के सामान खा डाले हैं।"

तो राजा के लक्षण कभी नहीं हो सकते। इन्साफ़ करने वाले हाकिम

को निष्पक्ष होना चाहिए। लेकिन आप की आज्ञा से राज महल के कुत्ते सुरक्षित हैं और दूसरे कुत्तों की अन्धाधुन्द हत्या हो रही है। यह तो न्याय नहीं हो सकता। सुनिए-काशवाणी भी हो रही है-'राज-महल के कुत्ते भूख से तड़प रहे हैं। और ये निर्दोष कुत्ते मारे जा रहे हैं ! राजा, यही तुम्हारा इन्साफ़ है ? क्या यहीं तुम्हारा धर्म है ?"

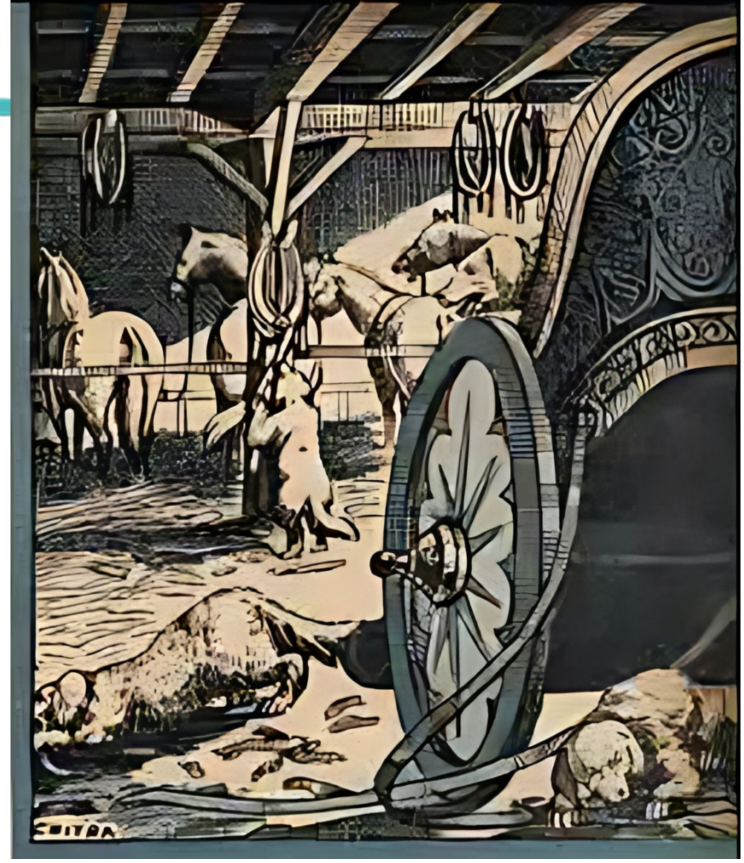
यह सुनते ही राजा के हृदय में एक उथल-पुथल होने लगी। उसने बोधिसत्व से कहा-"क्या अपनी बुद्धि-चातुरी से तुम अपराधी कुत्तों का पता लगा सकते हो ?"

इस पर बोधिसत्व ने कहा-"पता बताना क्या मुश्किल है ? राज-महल के उत्तम जातिवाले कुत्तों ने ही यह काम किया है, दूसरे किसी ने नहीं।"

"यह क्या कहते हो ?" चिढ़ कर राजा बोला।

"जरूरत पड़ने पर मैं इसे साबित भी कर सकता हूँ।" बोधिसत्व ने दृढ़ता से कहा।

राजाने कहा-"अच्छा, साबित करो। देखें।"



"अच्छा, अपने कुत्तों को यहाँ मँगवाइए। मैं सबित कर देता हूँ अभी।"

राजा ने राजमहल के कुतों को दरबार में लाने का आदेश दे दिया।

कुत्तों के आने पर बोधिसत्व ने फिर कहा-"अब थोड़ा मट्ठा और कुछ हरी दूब भी मँगवा लीजिए।"

छाँछ और हरी दूब भी आ गई। फिर बोधिसत्व के कहने से दूब मिला मट्ठा कुत्तों को थोड़-थोड़ा पीने दिया गया। बस, वह मट्ठा पीते ही कुत्तों को उल्टी होने लगीं और उनके पेट से खाए हुए सभी

चमड़े के टुकड़े निकल आए। यह देख कर बोधिसत्व बोला-"देख लिया न महाराज ने ! आपके नौकरों ने इन्हें खाना नहीं दिया था। इसी से इन्हें चमड़े खाने की जरूरत पड़ी।"

राजा आनन्द से उछल पड़ा। वह सम्झ गया कि कुत्ते के वेश में यह भगवान बोधिसत्व ही हैं। यह सोच कर वह उठा और उस कुत्ते को अपने सिंहासन पर बिठाकर अपना राज-मुकुट उसके माथे पर रख दिया। सारी सभा उस कुत्ते के सामने नत सिर हो गई।

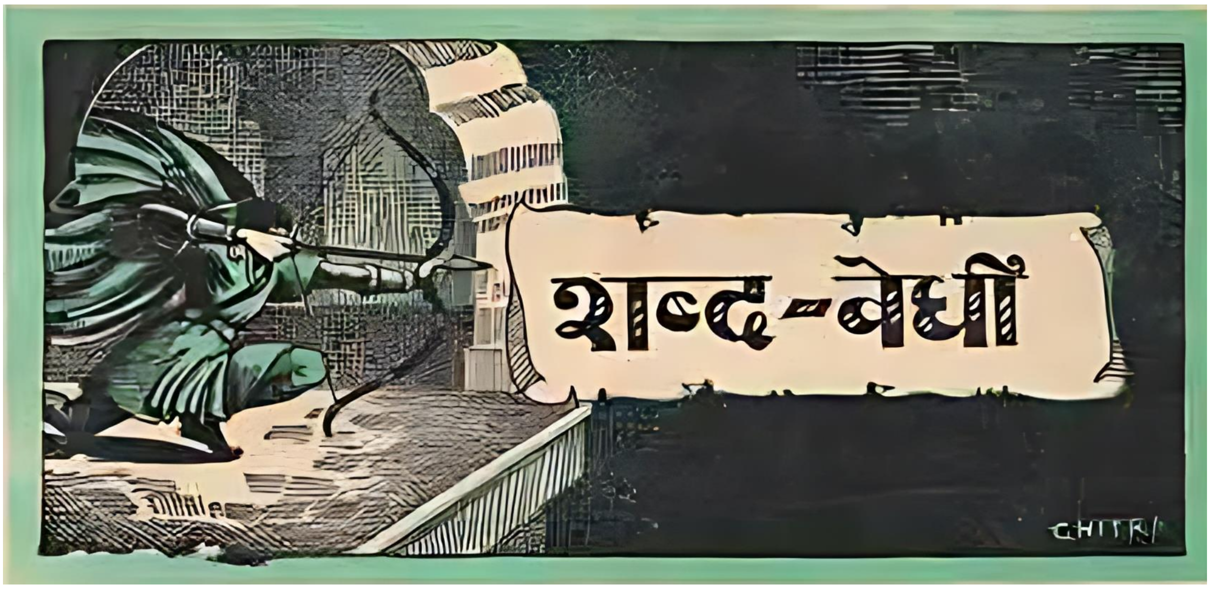
फिर बोधिसत्व ने राजनीति के ऊपर राजा को अनेक उपदेश दिए।

बोधिसत्व के उपदेश से राजा का हृदय ऐसा बदला कि वह अपने राज्य के सभी जीवों पर समभाव से दया दिखाने लगा। राजमहल से लेकर दूर देहात तथा जङ्गल-पहाड़ों तक उसकी दया फैल उठी। उसके राज्य में कहीं हत्या नहीं हो सकती थी। कोई कहीं चोरी नहीं करता था। कहीं झगड़े-फसाद नहीं होते थे। राजा का इन्साफ ऐसा था, उसका इन्तज़ाम ऐसा था कि कोई किसी को सता नहीं सकता था।

और कुत्ते के वेश में वह बोधिसत्व सारे राज्य में घूम-घूम कर धर्मोदेश देता रहता था जिससे आदमी के दिल में दया, प्रेम, सहयोग आदि की भावानाएँ दिन-दिन बढ़ती जाती थीं।

यों कुत्ता-वेशधारी बोधिसत्व ने राजा और प्रजा दोनों के जीवन को धन्य बना कर युग-युग के लिए अपना नाम अमर बना लिया।





विजयसिंह जब गिरिदुर्ग लौटा, तब देखा कि वहाँ की जनता एकदम निराशा में पड़ी हुई है। कारण था–युद्ध में हार और ऊपर से शब्द-वेधी की मार। फिर करुणाकर नहीं दीख पड़ा। पिता के मरने की बात विजयसिंह के मन में घूम रही थी। तब उसने रामसिंह से पूछा। रामसिंह ने एक क्षण उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा और फिर जवाब दिया-"मुझे इन बातों की कोई खबर नहीं। अच्छा यही है, कि तुम इन सब बातों में पड़ो ही नहीं। नहीं मानते हो, तो जाकर सोमशर्मा से पूछ देखो।" विजयसिंह, बगैर कुछ जवाब दिए ही चला गया। भीमसिंह ने अपने सिपाहियों को ढाढस बँधाया और देव-दुर्गाधिपति को एक चिट्ठी लिख भेजी। उसके यों रङ्ग बदलने में कोई आश्चर्य नहीं था। क्योंकि यह तो उसकी आदत ही थी। विजयसिंह सीधे सोमशर्मा के पास पहुँचा और वही सवाल उससे भी किया।

सोमशर्मा ने कहा-"इसके पहले क्या मैंने इसका जवाब नहीं दिया था ?" विजयसिंह को इससे सन्तोष नहीं हुआ।



वह सोच ही रहा था कि किसी ने आवाज दी-"भीमसिंहजी बुला हे हैं।"

विजयसिंह ने जब वहाँ जाकर देखा कि भीमसिंह चहलकदमी कर रहा है। सोमशर्मा के सिवा और तीसरा ब्यक्ति वहाँ नहीं था। विजयसिंह सब कुछ ताड़ गया। उसने धीरे से कहा-"क्या आपने मुझे बुलाया है ?"

"हाँ, जो मिलता है उससे तुम अंट-शंट सवाल करते रहते हो। मैंने तुम्हे पाल पास कर बड़ा किया, उसका यही प्रतिफल है न ? तुम्हारी क्या बुराई की मैंने ?औरस पुत्र से भी बढ़ कर तुम्हें देखता आ रहा हूँ।" झुञ्झला कर भीमसिंह बोल उठा।

विजयवर्मा ने दृढ़ता से जवाब दिया-"मैं कृतघ्न नहीं हूँ जो यह सब भूल जाऊँ। लेकिन पिताजी की मृत्यु के बारे में अनेक अफवाहें उड़ रही हैं। इनमें सच क्या है, जब तक यह मालूम नहीं हो, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिल सकती।"

"अच्छा, तो सुनो। भगवान की कसम खाकर कहता हूँ तुम्हारे पिता की मृत्यु के बारे में मैं कुछ नहीं जानता हूँ। मेरी बात पर विश्वास होता हो, तो अपना सन्देह मिटा दो। नहीं तो तुम भी जाकर मेरे दुश्मनों से मिल जाओ।" विजयसिंह का सन्देह मिट गया। सुख की साँस छोड़ता वह सोमशर्मा की ओर मुड़ा।

लेकिन सोनशर्मा का मुँह एकदम फक हो रहा था-काटो तो खून नहीं। डर के मारे काँप रहा था। विजयसिंह ने शङ्का से कहा-"अगर सामशर्मा भी कसम खा लें, तो.."

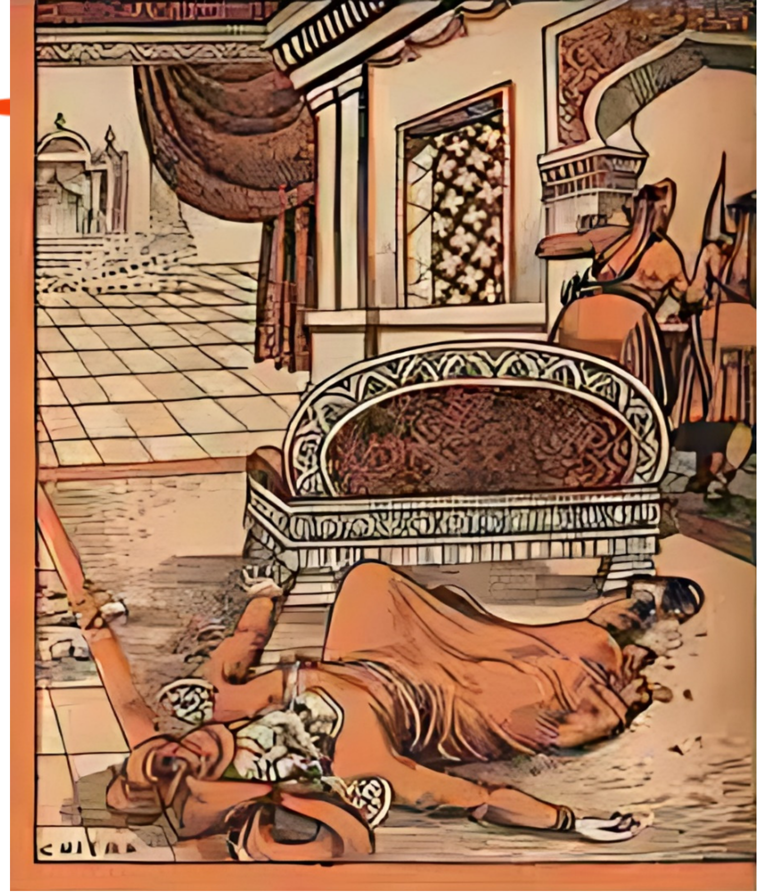
भीमसिंह ने सोत्साह कहा -"क्यों नहीं खाएँगे ? बेक़सूर को डर क्या ? खाओ

भाई, कसम खाओ।" लेकिन सोमशर्मा के मुँह से एक बात भी न निकली। डर से बह भीमसिंह की ओर देखने लगा।

इतने में कहाँ से एक तीर आया और तीनों जहाँ खड़े थे, उसके सामने की दीवार में चुभ कर, झूलने लग गया। देखते ही तीनों समझ गए कि यह शब्द बेघी तीर है। पागलों की तरह चिल्ला कर सोमशर्मा गिर पड़ा। भीमसिंह और विजयसिंह दोनों दौड़े और खिड़की से झाँक कर देखने लगे। लेकिन किसी तरह की आहट नहीं सुन पड़ी। दूर के पेड़ों पर चिड़ियाँ ज्यों की त्यों चुपचाप लेटी हुई थीं।

राजमहल के दरवाजों पर पहरेदार खड़े थे। भीमसिंह ने धीरे से कहा- "अच्छा, विजय, तुम अभी जाओ। सोमशर्मा कसम खाए बगैर रहेंगे कैसे ? लेकिन तुम जरा सावधान रहना। यह सब से जरूरी बात है।" ऐसा कह कर भीमसिंह ने विजयसिंह को विदा कर दिया।

सोमशर्मा होश में आ रहा था। उसकी और देख कर भीमसिंह बोला-"तुम्हारे कारण उसे फिर



सन्देह हो आया है। आज रात को अगर तुम भी कसम खा लो, तो उसकी जान बच जाएगी। नहीं तो उसे भी पिता को राह जाना पड़ेगा। तुरन्त उसे पश्चिम वाले कमरे में हटा दो।"

"पश्चिम वाले कमरे में ?" हकलाते हुए सोमशर्मा ने पूछा।

"हाँ, उसकी जान तुम्हारे हाथ में है। किसी तरह कसम खाकर उसे शान्त कर डोज तो वह बच जाएगा। नहीं तो बाप के साथ बेटे की हत्या भी तुम्हरे मत्थे मढ़ी जाएगी। बोलो, क्या चाहते हो ?" कुछ देर ठहरकर सोमशर्मा ने कहा-



"उसकी जान बचाने के वास्ते जो भी कहना होगा, कह दूँगा।" "बगल वाले कमरे में ही रहूँगा। जैसे बने, उसका सन्देह मिटा दो।" कह कर भीमसिंह चला गया। कुछ देर बाद विजयसिंह फिर उस कमरे में आया। बेचारे सोनशर्मा का चेहरा पीला पड़ गया था। उसने सिर उठा कर देखा और विजयसिंह का हाथ पकड़ कर निधड़क कह गया-"मैं भी कसम खा लूँ, तब तो तुम्हें सन्तोष होगा न ? तो सुनो। भगवान को गवाह रख कर कहता हूँ। तुम्हारे पिता की मौत से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ उसके बारे में।"

"अच्छी बात है। अगर आपका कोई सम्बन्ध नहीं तो और किसका है? यह बताइएगा ?" विजयसिंह ने पूछा।

"मुझे कुछ भी मालूम नहीं।" कह कर अस्तव्यस्त होता सोमशर्मा वहाँ से चला गया। कसम खाकर निर्दोषी सोमशर्मा को यों घबराए हुए जाते देख कर विजयसिंह को ताज्जुब हुआ। उसने चारों तरफ नज़र दौड़ाई। सामने की खिड़की कुछ हिलती हुई-सी दीख पड़ी। किसी की आँखें चमकी और क्षण-भर में ओझल हो गईं।

"हमारी बातचीत किसी ने सुन ली है।" विजयसिंह को इसका दृढ़ निश्चय हो गया। यह सब एक जादू जान पड़ता है- -छल- छन्द से भरा हुआ ! उसने सोचा-"मैं मकड़ी के जाल में फँस गया हूँ।" झट करुणाकर की याद आ गई। "मेरे कारण वह भी कहीं फँस गया होगा।" वह सोचने लगा। विजयवर्मा जैसे ही कमरे से निकला कि एक पहरेदार ने आकर कहा-"आप को दूसरे कमरे में रहने का हुक्म हुआ है।"

"क्यों? किस कमरे में ?"

"पश्चिम वाले कमरे में।"

"कमरा कैसा है? अच्छा है न?"

"कमरा है तो बहुत अच्छा; पर उस में रहता है भूत।" पहरेदार ने डरकर कहा।

शङ्कित मन से विजयसिंह अपने नए कमरे की ओर बढ़ा। उस कमरे की ऊँचाई तो कम थी, पर वह लम्बा-चौड़ा काफी था। उसमें एक बड़ा भारी पलङ्ग पड़ा था। कभी किसी बड़े आदमी का वह कमरा रहा होगा। यह सब देख कर विजयसिंह का शक और बढ़ गया। उसने उसकी दीवारों तथा आलमारियों की जाँच-पड़ताल की। लेकिन कहीं कोई विशेषता उसे नहीं दिखाई दी।

"चोर दरवाज़ा तो कहीं-न-कहीं होगा ही।" यों उसका सन्देह बढ़ता ही गया। "ऐसी जगह में आखें बन्द करना खतरनाक है।" उसने सोचा। इतने में दरवाजा खटखटाने की आवाज आई। पास पहुँचा और कान लगा कर सुनने लगा। कोई धीरे से कह रहा था-"दरवाजा खोलो।" आवाज पहचान कर विजयसिंह ने तुरन्त दरवाजा खोल दिया। हाथ में



कटारी लिए हुए करुणाकर अन्दर आया।

"क्या-क्या हुआ ? किले में घुसने के बाद फिर तुम दीख ही नहीं पड़े !" आतुर होकर विजयसिंह ने पूछा।

"क्या हुआ, इससे अब क्या मतलब? हम फिर से मिल तो गए। लेकिन तुम तुरन्त यहाँ से भाग खड़े हो। सवेरा होते-होते तुम्हारी जान नहीं बचेगी। उनकी कानाफूसी मैंने अपने कानों से सुनी है।" करुणाकर ने कहा।

इसके बाद दोनों चोर-दरवाजा ढूँढने



लगे। इतने में कमरे के बाहर पैरों की आहट हुई। दीप बुझा कर दोनों कोने में दुबक गए और देखने लगे। जहाँ सट कर वे बैठे थे, वहाँ की दीवार फटी और रोशनी अन्दर आई। विजय और करुणाकर साँस रोके यह देख ही रहे थे कि भवन के बाहर हो-हल्ला सुनाई पड़ा। बस, वह चोर दरवाजा बन्द हो गया। "शायद यह अच्छा समय नहीं है" यह सोच कर हत्यारे चले गए।

बाहर का कोलाहल अब साफ सुन पड़ने लगा। कोई कह रहा था- "करुणा कहाँ गई? करुणा ? खोजो खोजो।"

विजयवर्मा ने कहा-"यह करुणा कौन है, भाई ? क्या करुणाकर ? तुम्हें भूल से लोग लड़की तो नहीं समझ रहे हैं ?"

"शुरू में ही रुकावट आ खड़ी हुई। मुझे पकड़े बगैर ये नहीं रहेंगे। दरवाज़ा खोले। मुझे जाने दो, विजय। मुझे पकड़ने में जब वे व्यस्त रहें, तब मौके से तुम भाग निकलना।" करुणाकर ने समझाया।

विजयसिंह को अब सारी हालत मालूम हो गई। उसने कहा-"तुम करुणाकर नहीं-वही करुणा हो।"

करुणा चुपचाप खड़ी रह गई।

विजय फिर बोला-"अब भी कुछ आशा है। अगर अबकी सकुशल बच गए तो हमें कोई अलग नहीं कर सकेगा। और मरना ही हुआ, तो दोनों साथ मरेंगे।"

इतने में बाहर कुछ शब्द हुआ। फिर जोर-जोर से कोई दरवाजा पीटने लगा। दूसरे ही क्षण भीमसिंह का कण्ठ सुन पड़ा-"दरवाजा खोलो, विजय। अन्दर कौन है. मुझे मालूम है। पागल मत बनो।"

यह सुनते ही दोनों साथी चोर दरवाजे की ओर लपके। ज्यों ही वे बाहर हुए कि दरवाजा टूटा।

दरवाजे के बाहर, अन्धेरे पथ से जाते हुए, दोनों एक गुप्त स्थल में पहुँचे। आगे कोई रास्ता न देख कर वहीं रुक गए। उसी सङ्कट समय में करुणा ने अपनी कहानी कह सुनाई। "वह एक जमींदार की बेटी है। बचपन में ही माता-पिता के मर जाने से वह चन्द्रदुर्गाधिपति के घर पाही-पोसी गई थी। दुष्ट भीमसिंह ने उसे यहाँ से जबर्दस्ती मँगवा लिया और पुरुष वेश में रहने को लाचार कर दिया।"



यह कहानी सुन कर विजयवर्मा का दिल पिघल गया। "शरीर में साँस रहते में तुम्हें नहीं छोड़ूँगा।" उसने यह प्रतिज्ञा की। इतने में फिर पैरों की आहट सुनाई पड़ी। घूम कर देखा तो रामसिंह आ रहा था।

"यहीं है आप लोग ! जो सोचा था सो सच निकला।" रामसिंह ने कहा।

विजयसिंह ने चुरचार कटारी निकाल ली। रामसिंह बोला-"ठहरो, भले आदमी। भागने का कहीं रास्ता नहीं मिला ?अच्छा, तो मैं रास्ता दिखाता हूँ।"

विजयसिंह समझ गया कि रामसिंह भी उसका मित्र ही है। रामसिंह ने उसे वह गुप्त राह बता दी जिससे होकर भीमसिंह का दूत गया था।

दीवार पर से एक पत्थर हटाते ही एक दरवाजा दीखा। शीघ्र ही भाग जाने की सलाह देकर रामसिंह चला गया।

विजयसिंह और करुणा दोनों उसी रास्ते से चल कर किले की दीवार के पास पहुँचे। वहीं वह खिड़की थी जिस में से होकर भीमसिंह का दूत कूदा था। रस्सी अब तक लटक रही थी। विजयवर्मा ने सोचा-"अब चिन्ता की कोई बात नहीं।" इतने में पीछे से चिल्लाहट सुनाई पड़ी।

"करुणा, आ जाओ। अब देर करने से कोई फायदा नहीं।" विजयसिंह ने कहा। लेकिन करुणा ने नीचे झाँका तो गहराई को देख कर थर-थर काँपने लग गई। इतने में भीमसिंह के सिपाही पहुँच गए। "अब चाहे जो हो" सोच कर विजयसिंह ने रस्सी पकड़ी और कूद पड़ा। ऊपर से तीर बरसने लगे। लेकिन उसकी परवाह किए बगैर वह खाई को पार कर गया। फिर घनी झाड़ियों में ओझल होकर निश्चिन्त चलने लगा।

कुछ दूर जाने पर शब्द-बेधी तीर का शिकार भीमसिंह का वह निष्प्राण सिपाही दीख पड़ा। उसकी तलाशी लेने पर एक चिट्ठी निकली। उस से मालूम हुआ कि भीमसिंह ने देवदुर्गाधिपति को सुलह का सन्देश भेजा है।

"समय पर यह चिट्ठी काम आएगी" यह सोच कर विजयसिंह ने चिट्ठी अपने पास रख ली। कुछ दूर जाने पर शब्द-बेधी तीर छोड़ने वालों का दलाधिपति भी दीख पड़ा। इस बार विजयवर्मा को उसके पास जाने में कोई सङ्कोच नहीं हुआ। शब्द-वेधी चण्डीदास ने उसका हृदय से स्वागत करते कहा-"करुणा को छोड़ आना घडी बुद्धिमानी का काम हुआ है।"

फिर विजयसिंह ने भीमसिंह को एक चिट्ठी लिखी-"तुम्हारी सारी करतूत मुझे मालुम हो गई। अब देख लेना इसका क्या फल मिलता है तुम्हें !"

उस पत्र को पढ़ते ही भीमवर्मा के दाँत कटकटा उठे।

[अभी और है।]





बड़ों के साझे का काम

आदमियों की बस्ती से बहुत दूर एक घना बीहड़ जङ्गल था। एक दिन खड़ी दुपहरी की बेला थी। चिलचिलाती कड़ी धूप पड़ रही थी। उसी समय प्यास से घबरा कर एक सियार अपनी माँद से बाहर निकला। थोड़ी दूर जाने पर उसे एक तलैया दीख पड़ी। वहाँ जाकर उसने पेट भर पानी पिया और फिर से वहीं एक पेड़ की छाया में वह लेट गया।

उसी समय एक भेड़िया भी वहाँ आ गया। सियार को देख कर उसे बड़ी ख़ुशी हुई। सियार साहसी और बहादुर तो नहीं होता, लेकिन चालाकी में वह बेजोड़ होता है। भेड़िए ने कहा-"क्या भाई, आराम मे लेटे हुए हो। क्या आज खूब डट कर शिकार किया है?"

शिकार नहीं, मेरा सिर ! आग की तरह बरसने वाली इस तेज धूप के मारे तो मेरा कण्ठ सूख रहा है। फिर सैरो-शिकार की बात कैसी ? और हम शिकार क्या खाक करेंगे ? रोज मुर्गी खाते-खाते तो जीभ नीरस हो गई है।" मुँह बिचका कर सियार ने जवाब दिया।

यह सुनते ही भेड़िए को कुछ याद आ गया। उसने भी उसी निराशा के स्वर में कहा-"सच भाई सियार ! तुम सोलह आने सही कहते हो। रोज हरिन और नन्हें मेमनों को खाते-खाते मेरी भी रुचि एकदम मर गई है।"

इतने में कहीं से एक चीता भी वहाँ आ धमका। उसको देखते ही सियार और भेड़िए उठ खड़े हुए, फिर अपनी-अपनी पूँछें झाडी, कान फट-फटाए और अदब से सिर झुका कर चीते को नमस्कार किया।

बीरेन्द्रसिंह चौहान



किसी गहरी गपशप में पड़े दीख पड़ते हो तुम दोनों साले-बहनोई। शायद कोई भारी-भरकम शिकार करने की बात सोची जा रही है।" चीता बोला और वह भी वहीं एक पेड़ से सट कर बैठ गया।

सियार और भेड़िया मर्म-भरी निगाह से एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

इतने में सियार को कुछ सूझ गया और बड़ी नम्रता से बोल उठा- "मामूजी, आपके प्रताप और बल के सामने हम नाचीजों की क्या हस्ती ! हमें क्या कभी थुलथुल करते जङ्गली सूअरों का मांस सूँघने को भी मिल पाता है? क्या हमें कभी हाथी से अरनों की हड्डियाँ भी चाभने को मिल पाती है ? फिर हम क्या और हमारा शिकार क्या ?"

"तुम लोगों को अचरज तो होगा सुन कर, पर बात है सच्ची। जङ्गली सूअरों और अरनों का मांस खाते-खाते मेरी जीभ रुखड़ी हो गई है। अरे भाई, खाना हो तो हाथी का मस्तक फाड़कर खाना चाहिए। उसी में जवाँ मर्दी है। कहो, क्या कहते हो तुम लोग ? ठीक हैं न ?' घमण्ड से चीता बोला।

चीते की बात सुन कर सियार बड़ी आजिजी से कहने लगा-"मामूजी, आप सचमुच भगवान ही हैं। आपके आते ही हमारे सारे कष्ट दूर हो गए और आप को देखते ही एक अच्छी बात भी सूझ गई है। छोटी नहीं, वह एक बहुत बड़ी बात है, समझ रखिए।"

यह बात सुनते ही भेड़िए और चीते ने आतुरता से कहा-"क्या-क्या? जल्दी कह डालो वह बात।"

सुनते ही मुँह से पानी टपक पड़े, इस ढङ्ग से बोलते हुए सियार ने कहा-"सच, मामूजी और भाई साहेब की रुचि मर गई है, यह तो आइने की तरह साफ हो गया है। मेरी बात पूछने की जरूरत ही नहीं। ऐसी हालत

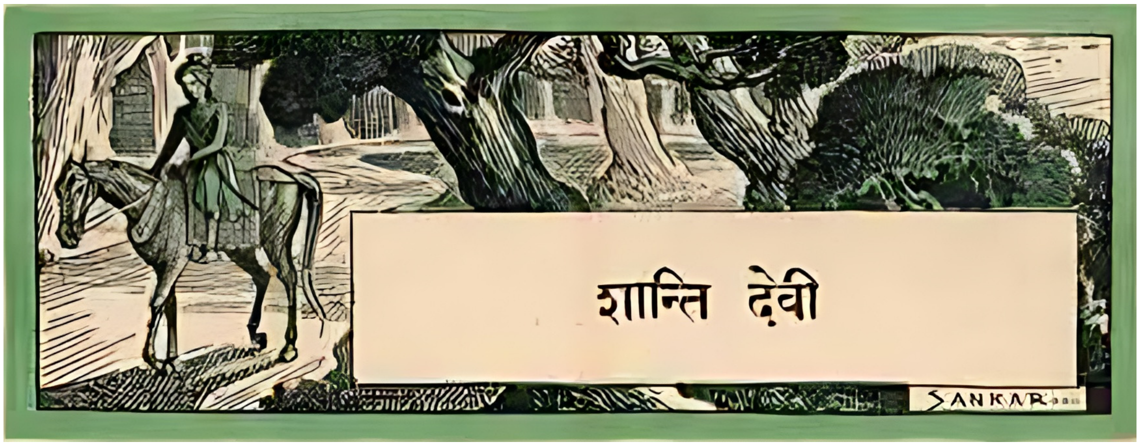
में चलें हम सिंह महाराज के पास और उनको साथ लेकर कोई मजे का शिकार करें।" "बहुत अच्छी बात कही तुमने। भेड़िए और चीते ने एक स्वर से कहा। फिर तीनों उठे और सिंह के पास पहुँचे। बड़ी नम्रता से सिर झुका कर, सलाम करके फिर सब बातें कह सुनाई। सब कुछ सुन कर सिंह ने मुस्कुराते हुए कहा-"बहुत अच्छा।"



सिंह को आगे करके तीनों उसी दुपहरी में हाथी की खोज में निकल पड़े। आगे-आगे अयाल डुलाता सिंह जा रहा था और उसके पीछे दुम डुलाते तीनों जा रहे थे।

सूरज डूबने तक चारों शिकारी जानवर घूमते ही रहे। लेकिन जिसकी आशा थी, वह हाथी उन्हें नहीं मिला। हाथी की बात क्या, उसका नामो निशान भी नहीं मिला। आखिर नौबत यहाँ तक पहुँची कि हाथी तो दूर रहा, कोई भी माँस मिल जाय तो पेट की आग शान्त हो। इतने में सामने से जाता एक हिरन दिखाई दिया। बस, चारों ने घेर कर उसे मार डाला। सियार ने बराबर-बराबर चार हिस्से कर दिए। भूख से व्याकुल हो रहे चीता और मेडिया अपना-अपना हिस्सा खाने जा ही रहे थे कि सिंह गरज उठा-"ठहर जाओ! मैं जङ्गल का राजा हूँ। यह तो तुम लोग जानते ही हो राजा होने के कारण मुझे दो हिस्से मिलेंगे ही। न्याय- शास्त्र के अनुसार मेरी सन्तान को भी एक हिस्सा मिलना चाहिए। अब रह गया एक हिस्सा। वह हिस्सा जो मुझसे लड़कर जीत जाएगा, वह लेगा। यह कह कर सिंह ने शिकार को अपने पास खींच लिया और अयाल झाड़कर खड़ा हो गया।

"बड़ों के साझे में काम करने का यही फल होता है।" यह सोचते तीनों दुम दबाए वहाँ से खिसक गए।



शान्ति देवी

पहले के जमाने में कुछ लोग तलवार के धनी होते थे और उसी के बल पर जीते थे। यानी तलवार लेकर किसी राजा की फौज में भरती हो जाते थे और लड़ाई-भिड़ाई करके जिन्दगी गुजार देते थे।

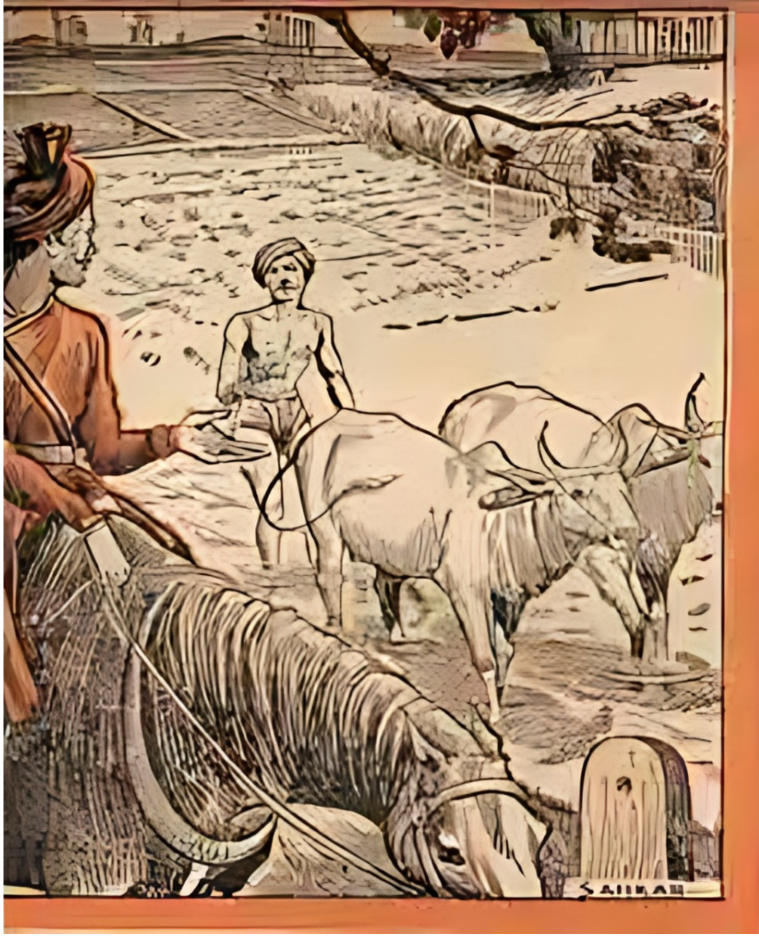
इस तरह तलवार का धनी और अनेक युद्धों में भाग लेने वाला सूरसिंह नामक एक भारी योद्धा था। एक बार ऐसा हुआ कि उसे कोई काम नहीं रह गया। राजा लोग लड़ाई - भिड़ाई से ऊब उठे थे। इसलिए उनमें सुलह हो गई थी। हर्बे-हथियार सब कोने में डाल दिए गए थे। जब राज्य में सर्वत्र शान्ति बरस रही थी, तब लड़ाई-भिड़ाई की क्या जरूरत थी और फिर किसी को सेना ही क्यों चाहिए थी?

इस तरह सूरसिंह की तलवार बेकार हो गई और वह मारी सङ्कट में जा पड़ा। उसे तो एक ही काम मालूम था- तलवार चलाना। चाहे जितने भी सिर उसके सामने आ जाते, आसानी से सब को खपाखप काट डालता था। लेकिन अब न कहीं लड़ाई रही, और न उसके लिए कोई काम रहा। फिर वह बचे तो कैसे बचे ?

"राजा लोग अब डरपोक बन गए हैं। जनता में साहस का नाम नहीं रह गया है। फिर मेरी तलवार भी तो अब कोने में पड़ी जङ्ग ही खाती रहेगी न !" यों वह बेहद चिन्ता में पड़ गया और खाने-कपड़े बगैर दिन-दिन सूखने लगा।

दाना-घास न मिलने से उसका घोड़ा भी लड़खड़ाने लगा था। आखिर लाचार होकर सूरसिंह कहीं नौकरी की खोज में निकला।

जाते-जाते एक दिन सूर्योदय के समय वह एक खेत के पास पहुँचा। खेत में एक



किसान हल जोन रहा था। सूरसिंह ने घोड़े पर चढ़े ही उसे पुकार कर कहा-"अरे माई, मेरा नाम सूरसिंह है। मैं एक बड़ा बहादुर सिपाही हूँ। लेकिन अब मेरे पास कोई काम नहीं है। क्या तुम मेरे लिए कोई काम बता सकते हो?"

यह सुनते ही किसान ने हल जोतना रोक दिया और मुड़ कर सूरसिंह की ओर देखा। उसका कमर में लटकती तलवार को देख कर उसे कुछ डर भी हुआ और उसपर तरस भी आया। उसने कहा-"हल जोतना आता हो तो मेरे पास काम है। लेकिन पहले अपने हर्बे-हथियार उतार फेंको। फिर आ जाओ मेरे पास।"

सूरसिंह बोला-"अरे भाई, मुझे हल जोतना मालूम नहीं। तुम्हारा कहीं कोई दुश्मन हो तो बताओ तुरन्त उसका सिर उतार कर तुम्हारे सामने ला रखूँगा। बस, तुम मुझे पेट भर खाना और घोड़े को दाना-घास देते रहना।"

किसान कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर वह उसकी ओर अचरज से देखता रहा और फिर हल जोतने में लग गया।

सूरसिंह सोचने लगा-"छिः छिः ! लोग कैमे कायर हो गए हैं। भला आदमी कहीं बगैर दुश्मन के भी रह सकता है ? लेकिन साहस के अभाव में वह चुप रह जाता है। यह अभागा किसान मुझे हल जोतने को कहता है ! क्या मेरे भाग्य में यही लिखा हुआ है ?"

यों सोचता-विचारता सूरसिंह एक जङ्गल से होकर गुजरा और एक हरे भरे मैदान में पहुँचा। उस मैदान में, एक ऊँची जगह पर, एक रण-चण्डी की मूर्ति खड़ी थी। वही युद्ध-देवी थी। उसको देखते ही सूरसिंह उत्साह से भर गया और घोड़ा दौड़ा कर उसके पास जा पहुँचा।

बीस फुट लम्बी वह देवी मूर्ति थी। उसकी आँखों से अङ्गारे बरस रहे थे और हाथों में नङ्गी तलवार-- देखते ही लोग भयभीत हो जाते थे।

देवी के हाथ में तलवार देखते ही सूरसिंह उमङ्ग से भर गया और चिल्ला उठा-"वाह, कैसी अपूर्व मूर्ति है ! एकदम ठोस सोने की बनी है !"

उसके जवाब में झट एक दूसरी आवाज़ आई-"अरे मूर्ख ! सेने की नहीं, मूर्ति तो चाँदी की बनी है- बिलकुल चाँदी की।

आवाज़ के साथ-साथ उस मूर्ति के पीछे से ढाल-तलवार लिए हुए, एक घुड़सवार निकल आया।

उसे देखते ही पराक्रमी सूरसिंह के दाँत कटकटा उठे। उसने म्यान से तरवार खींच ली और गरज कर कहने लगा-"अरे नादान, तू मुझे झुठला रहा है ? मैं कौन हूँ–जानता भी है क्या? मैं सू... र.... सिं....ह.... हूँ - सू....र....सि....ह सुन ले !"

आगन्तुक घुड़ सवार व्यङ्ग से हँसा और फिर म्यान से तलवार खींचते बाला-"अरे अहमक, तू तो निरा अन्धा मालूम होता है जिसे चाँदी



और सोने में फर्क दिखाई देता हो, उसके साथ तलवार भिड़ाना मेरे लिए अपमान की बात है। मेरा नाम है धीरसिंह-यह जानते हुए भी तू यों दिन को रात बना रहा है। तो फिर आ, में अपनी तलवार का जौहर दिखाता हूँ तुझे !" कहता और घोड़े को एँड़ लगता वह समने आ डटा।

दूसरे ही क्षण दोनों भिड़ गए। तलवार की झनझनाहट से, घोड़ों के हींसने से और दोनों बीरों की ललकारों से वह मैदान गूँजने लगा। इतने में सहसा एक सुरीली ध्वनि सुन पडी-"ठहरो, ढाल-तलवार हटाओ।"

दोनों योद्धा अचरज से उस ओर देखने लगे। मल्लिका, फूल की तरह सफेद पोशाक पहने और मुख मण्डल से शान्ति बरसाती एक युवती हँसती हुई उन दोनों के सामने आई और बोली-"तुम दोनों सचमुच बेजोड़ शूर-वीर हो।"

"उसकी बात क्या ? लेकिन मेरा नाम है सूरसिंह।" पहले योद्धा ने गर्व से कहा। दूसरे ने भी उसी स्वर में दुहराया-"उसकी बात कौन जाने, पर मेरा नाम है धीरसिंह।"

युवती ने कुछ ताना देते कहा-"तुम्हारी तलवारों में जितनी तेजी है, अगर उसका शतांश भी तुम्हारी बुद्धि में होता, तो आज तुम में यह भिड़न्त नहीं हो पाती।"

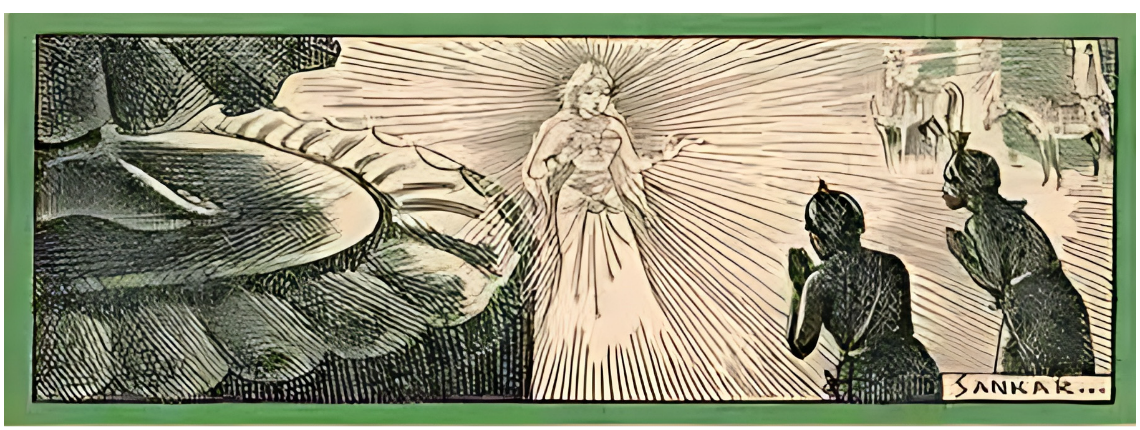
सूरसिंह ने अपने प्रतिद्वन्द्वी की मखौल उड़ाते हुए कहा-"इस बेवकूफ के आँखें नहीं हैं। कहता है यह मूर्ति चाँदी की है।"

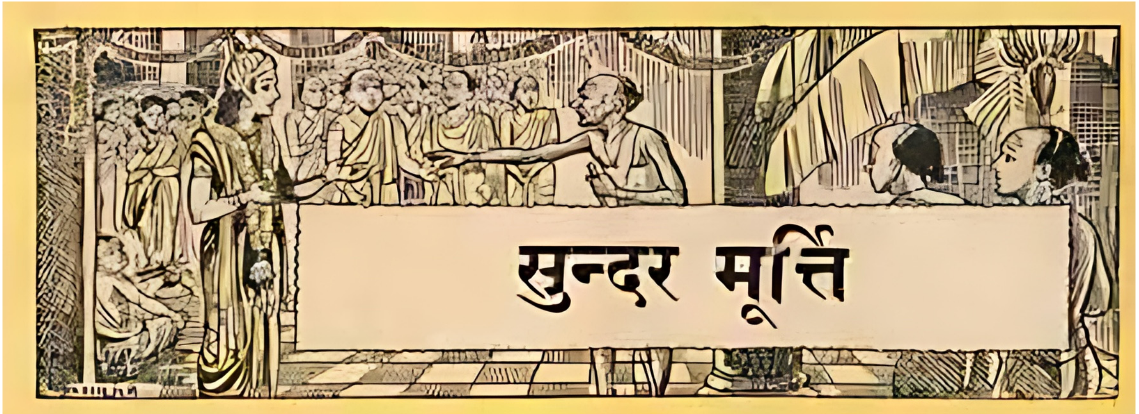
धीरसिंह ने भी उसी तरह परिहास करके कहा-"देखो न। यह मूर्ख चाँदी की इस मूर्ति को सोने की मूर्ति कहता है। कैसी तेज निगाह है इसकी !"

युवती खिल-खिला उठी और दोनों बीरों को साथ लेकर मूर्ति के इर्द-गिर्द घूमने लगी। घूमते हुए सूरसिंह को यह मूर्ति चाँदी से मढ़ी दीख पड़ी और धीरसिंह को सोने की दिखाई दी। दोनों अचरज से एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

इतने में वह युवती अदृश्य हो गई। उनके कानों में एक आवाज़ पहुँची-"वीरो, मैं ही शान्ति देवी हूँ। तुम दोनों महान वीर हो सही, लेकिन बेजरूरत युद्ध करना छोड़ो। कभी भी झूठे आवेश में मत आओ और शान्तिपूर्वक जीवन बिताओ।"

यह सुन कर दोनों 'शूर-वीर' घोड़ों से उत्तर पड़े और एक-दूसरे के गले लग गए।





नौवीं सदी के शुरू-शुरू में "सुन्दर नायनार" नामक एक बड़े भक्त हमारे देश में पैदा हो गए हैं। वे सिर्फ भारी भक्त ही नहीं थे, उनका जीवन चरित भी अत्यन्त अद्‌भुत था। तमिलनाडु के तिरुनावलर गाँव में एक ब्राह्मण परिवार रहता था। उसी परिवार में एक सुन्दर बच्चे का जन्म हुआ। बच्चा देखने में इतना सुन्दर था कि उसका नाम ही 'सुन्दर' पड़ गया। बच्चे के दिव्य सौंदर्य और उसकी अदभूतता पर उस गाँव का नायक मुनरायर अत्यन्त आकृष्ट हुआ।

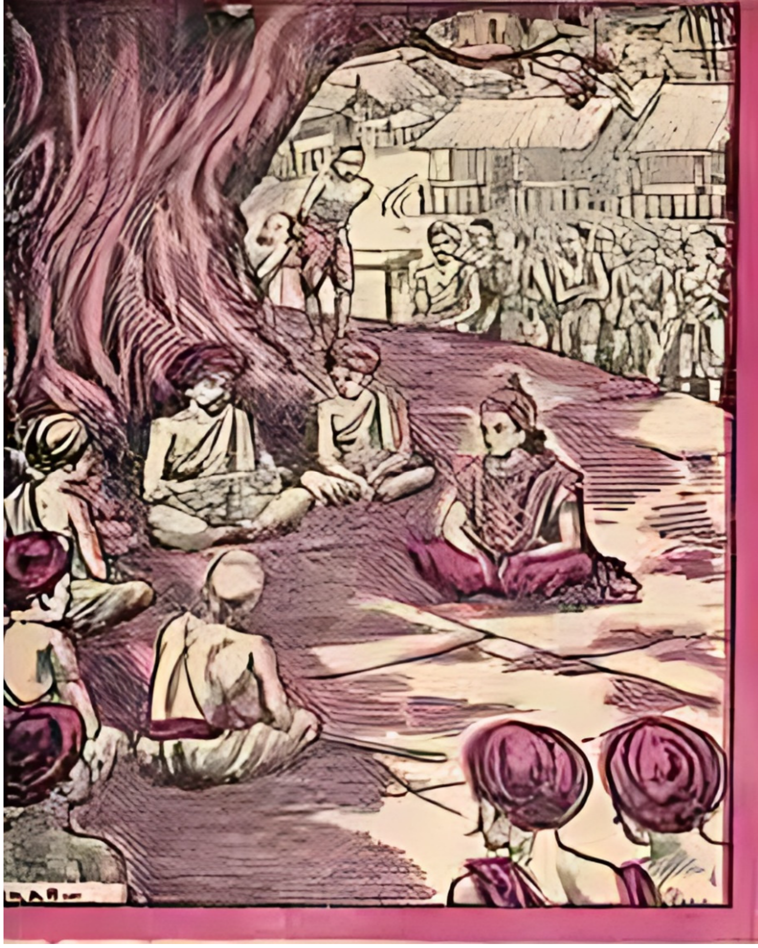
वह उसे अपने घर ले गया और बड़े लाड़-प्यार से पालने पोसने लगा। उमर होने पर जनेऊ आदि देकर पालक-पिता ने उसको एक नामी गुरु के पास पढ़ने के लिए बिठा दिया। कुछ ही दिनों में समस्त विद्या में 'सुन्दर' पारङ्गत हो गया ।

कमशः 'सुन्दर' विवाह के लायक हुआ। ऐसे अपूर्व वर के लिए दुल्हिन की क्या कमी थी। आसानी से विवाह सम्बन्ध ठीक हो गया। विवाह मण्डप में वर बैठने ही जा रहा था कि एक जटिल बूढ़ा आया और बोला-"यह मेरा नौकर है। बिना मेरी आज्ञा के तुम लोग इसका विवाह कैसे करने जा रहे हो ? अगर मेरी बात पर विश्वास न होता हो, तो यह पत्र देख लो।"

लोग अचरज में पड़ गए। गुस्से में आकर 'सुन्दर' ने बूढ़े के हाथ से वह पत्र छीन लिया और बगैर देख ही फाड़ कर फेंक दिया।

इससे बूढ़ा जरा भी विचलित नहीं हुआ और दृढ़ता से बोला-"मैं तिरुवेन्नैनल्लूर गाँव का रहने वाला हूँ। 'सुन्दर' ने जो पत्र फाड़ फेंका है, वह नकल मात्र है। असल ताड़-पत्र मेरे पास सुरक्षित है। जो देखना चाहें, देख सकते हैं।"

रामस्वामी चौधरी



वहाँ जमा हुए सब लोग एक स्वर से चिल्ला उठे-"पागल कहीं का! कहाँ यह ब्राम्हण का बच्चा और कहाँ तुम्हारी सेवकाई ! कोई इस अनहोनी बात पर कैसे विश्वास करेगा? भागो यहाँ से, भागो।"

लोगों की इस चिल्लाहट से वह बूढ़ा बिगड़ उठा। उसने जोर से कहा-"मैं किसी तरह यहाँ से हट नहीं सकता हूँ। मेरे पास प्रबल प्रमाण है।" "अच्छा, लाओ, वह ताड़पत्र मुझे दिखाओ।" कहता 'सुन्दर' उसके पीछे पड़ गया।

बूढ़े ने तुरन्त कहीं से एक ताड़पत्र लाकर ग्रामवासियों के बीच रख दिया।

वह पत्र 'सुन्दर' के पितामह के हाथ का लिखा हुआ था। पत्र में साफ़-साफ़ लिखा हुआ था-"हम और हमारी आने वाली पीढ़ी दर पीढ़ी की सन्तान सभी तिरुवेन्नैनल्लूर वाले शैतान के सेवक बने रहेंगे।"

वह पत्र पढ़ कर सभी नर-नारी विस्मित हो उठे। गाँव की पञ्चायत बैठी और 'सुन्दर' के पितामह के हस्ताक्षरों की मिला-जुला कर खूप जाँच-पड़ताल शुरू हुई। यह सब कुछ देख सुन लेने पर पञ्चों ने फैसला दिया-"यह ताड़-पत्र ठीक सुन्दर के पितामह का लिखा हुआ है। इसमें रञ्चमात्र भी सन्देह नहीं।"

इसके बाद पञ्चों ने गरज कर उस बूढ़े से कहा-"अच्छा, भाई, तुम अपना घर बताओ तो सही।"

यह सुन कर बूढ़ा हँस उठा और 'सुन्दर' का हाथ पकड़ कर मन्दिर की ओर चल पड़ा। सभी लोग उसके पीछे हो लिए। जाते जाते बड़े मन्दिर के गर्भगृह में जाकर वह बूढ़ा गायब हो गया।

'सुन्दर' जैसे सोकर उठा हो। उसकी पूर्व जन्म की स्मृति एकारक जाग उठी। पूर्व जन्म में एक दिन घूमते-घूमते वह

'सुन्दर' कैलास पहाड़ पर जा पहुँचा था। वहाँ पार्वती देवी के पास रहने वाली दो सुन्दर सेविकाओं को देख कर मन-ही-मन यह सोचने लगा- "अहा! ऐसी सुन्दरियों से व्याह न हुआ, तो फिर जन्म ही अकारण गया।"

यह देख कर महदेव ने क्रुद्ध होकर उसे शाप दे दिया-"जा, भूलोक में मेरा सेवक होकर पैदा हो।"

'सुन्दर' भगवान का अनुचर तो था ही। परमेश्वर के पैरों पर गिर कर उसने क्षमा माँगी। यह देख कर अवढरदानी को अपने भक्त के ऊपर दया आ गई और उन्होंने उसे मुक्ति का उपाय भी बता दिया।

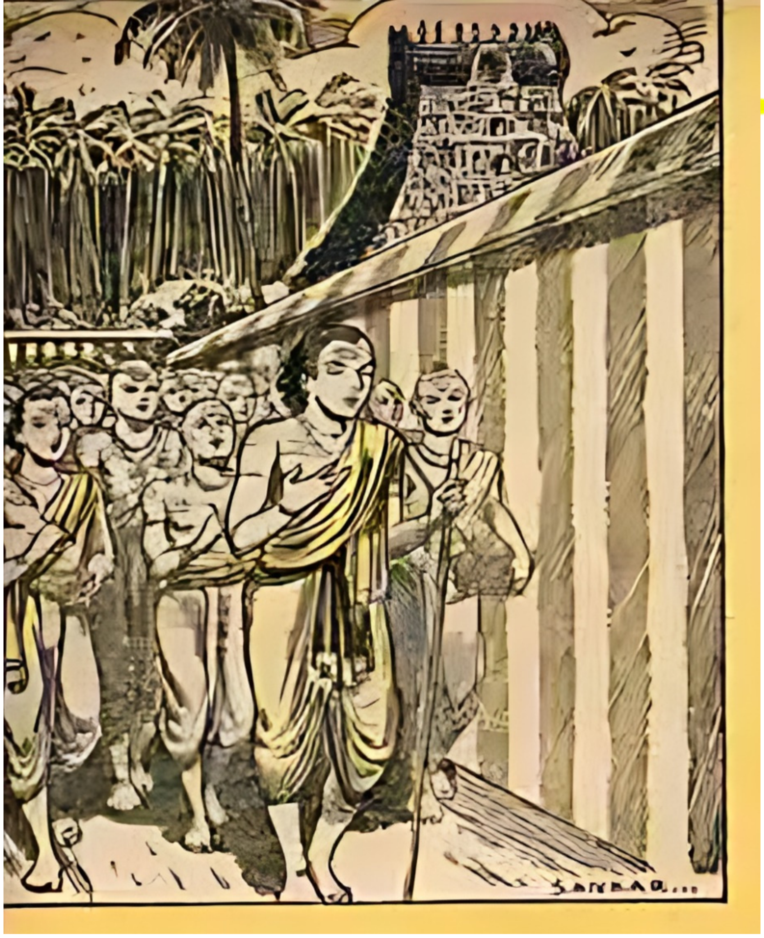
उसी शाप के फल से 'सुन्दर' को दिव्य देह छोड़ कर इस पृथ्वी पर आना और मनुष्य रूप में पैदा होना पड़ा।

यों ज्ञानोदय होते ही 'सुन्दर' की ईश्वर भक्ति दिन-दिन तीव्र होने लगी। तब उसने एक ओर से देश के समस्त शिवालयों की यात्रा शुरू कर दी। जहाँ जहाँ वह जाता था, मृदु-मधुर कण्ठ से परमेश्वर की स्तुति करता। उसकी भक्ति और बिह्वलता देख कर पत्थर मी पिघल पड़ते थे। यों जहाँ-जहाँ वह गया, परमेश्वर ने उसे अपनी कई अद्‌भुत महिमा दिखाई,



जिससे 'सुन्दर' का नाम सारे देश में विख्यात हो गया।

सुन्दर चिदम्बरम् और तिरुवारुर तीर्थो में भी गया। तिरुवारूर में जब वह था तो 'परबैनाचियार' नामक एक कुसुमाङ्गी कन्या से उसका ब्याह हुआ। सुन्दर को अपने पूर्व जन्म के ज्ञानबल से यह मालूम हो गया था कि यह 'नाचियार' ही पार्वतीदेवी की परिचारिका थी जिस पर वह मुग्ध हुआ था। फिर 'तिरुवतियूर' ग्राम में जाकर उसने एक बेल वृक्ष के नीचे साङ्गली नाचियार से भी विवाह कर लिया। वह 'साङ्गली नाचियार' अलौकिक सुन्दरी थी। 'सुन्दर' समझ गया था कि यह वही



अप्सरा है, जो पूर्व जन्म में पार्वती देवी की परिचर्या में थी। परमेश्वर की प्रेरणा से उसने प्रतिज्ञा की कि मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा। लेकिन विवाह होते ही वह भारी चिन्ता में पड़ गया। इसका कारण यह था कि प्रतिज्ञा के अनुसार अब वह इस बेल वृक्ष को छोड़ कर दूसरी जगह कैसे जा सकता था? और यहाँ से वह टलेगा नहीं तो फिर बाकी पुण्य क्षेत्रों का दर्शन वह कैसे कर सकेगा? इसलिए उसने कातर होकर परमेश्वर से प्रार्थना की-"देवाधिदेव | शीघ्रता में बिना सोचे-विचारे ही मैं प्रतिज्ञा कर बैठा हूँ। अब उसे तोड़ूँ कैसे ? अतः अब दया करके आप ही इस वृक्ष में विराजमान हो जाइए।" यों भक्त की प्रार्थना पर आशुतोष भगवान को उस बेल वृक्ष में रहना पड़ा।

सङ्गली नाचियार के साथ कुछ दिन रहने पर सुन्दर के मन में अन्य क्षेत्रों के दर्शन की चाह तीव्र हो उठी। प्रतिज्ञा भङ्ग होते देख कर भी वह तिरुवतियूर छोड़ कर दूसरे क्षेत्र की ओर चल पड़ा। लेकिन जैसे ही वह गाँव की सरहद पर पहुँचा कि उसके दोनों नेत्र बन्द हो गए। लेकिन अन्धे हो जाने पर भी उसका उत्साह कम न हुआ और भक्ति भावना से भरे स्तोत्र पढ़ता हुआ पुण्य पथ पर बढ़ता चला गया।

हिमालय-सा ऊँचा और सागर-सा गहरा अनुराग लिए, हाथ में लाठी पकड़े थाह लेते पैरों से, जैसे ही वह काञ्चीपुरम पहुँचा कि उसकी बाई आँख खुल गई। फिर तिरुवारुर पहुँचते-पहुँचते उसके दोनों नेत्रों में पूर्ण-ज्योति लौट आई।

इस बीच 'सुन्दर' की पहली सी परवैनाचियार को मालूम हुआ कि उसके पति ने दूसरा विवाह कर लिया है। इस पर गुस्से से उसने कह दिया-"सुन्दर अब मेरे घर में कदम नहीं रख सकता है।"

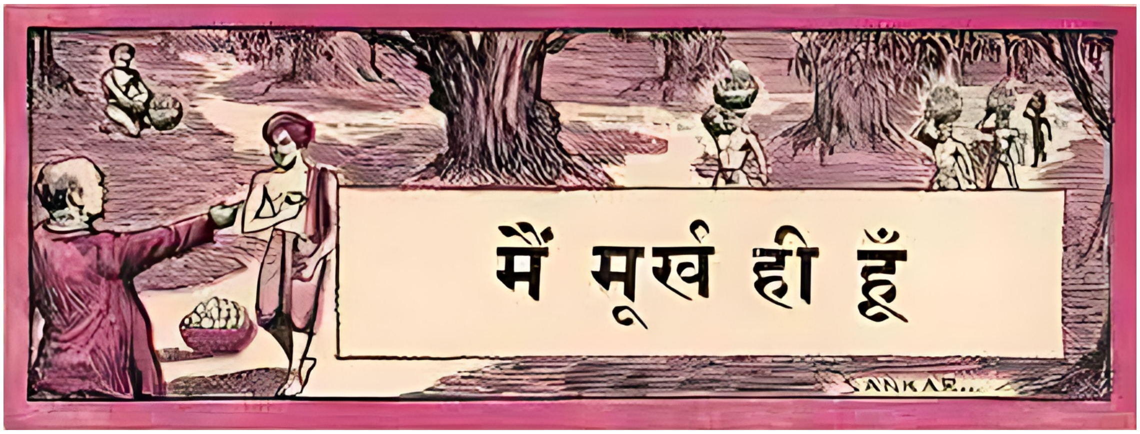
इस पर 'सुन्दर' ने परमेश्वर की करुणा पूर्ण स्तुति की। देवाधिदेव प्रत्यक्ष हुए और पति-पत्नी में मेल करा दिया।

यह सब सुन कर कलिकामनायनार नामक एक शिव-भक्त को बेहद खटक गया। उसने 'सुन्दर' से घर जाकर कहा-"तुम कैसे भक्त हो जी, जो देवाधिदेव को अपनी संसारिक वासना पूर्ति के लिए दूत की तरह इधर-उधर दौड़ाते रहते हो ? धिक्कार है तुम्हें और तुम्हारी भक्ति भावना को !" उस भक्त की फटकार सुन कर सुन्दर अत्यन्त दुःखित हुआ। परमेश्वर को भी बहुत बुरा लगा। सहसा एक दिन उस शिव-भक्त के पेट में ऐसा भारी दर्द शुरू हुआ कि उसकी जान ओठों पर आ गई। बहुत तरह की दवा-दरू की गई, पर फायदा कुछ नहीं हुआ। उसके बाद उस भक्त को स्वप्न हुआ-"तुम्हारे पेट दर्द की दवा एक मात्र सुन्दर के पास है। जाकर उससे इलाज करवा लो।" लेकिन उस हठी शिव-भक्त को आँतों का फाड़ कर मर जाना मन्जूर था, पर सुन्दर की कृपा का भार उठाना स्वीकार न था।

इसी दृढ़ निश्चय से उसने अपने प्राण-त्याग दिए, पर सुन्दर के पास नहीं गया।

उस शिव भक्त को यों प्राण त्याग करते देख कर 'सुन्दर' को अत्यन्त कष्ट हुआ। उसने परमेश्वर से आतुर प्रार्थना को। दुःख-कातर भक्त की प्रार्थना भगवान कैसे अनसुनी कर जाते ? कैलास से आकर अपने ही भक्त को उन्होंने फिर से जिला दिया। पुनर्जन्म पाकर वह शिव भक्त 'सुन्दर' की महिमा समझ गया और दोनों प्रेमानुराग के बन्धन में बन्ध गए। इसी समय सुन्दर की दूसरी स्त्री 'सङ्गली नाचियार' भी अपने पति देव को खोजती ढूँढती वहाँ आ पहुँची और सब लोग सानन्द रहने लगे।



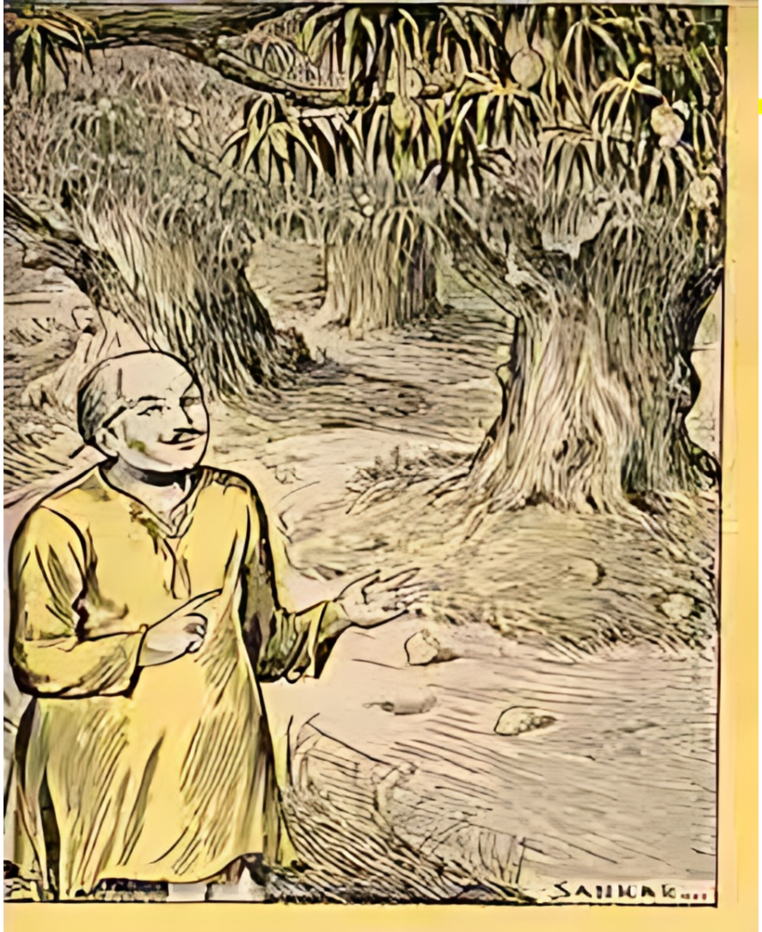


बहुत पहले की बात है। एक गाँव में ठक्कर साहू नामक एक बनिया था। उसके पास नकदी पूँजी के साथ-साथ सभी तरह के फल-वाले पेड़ों से भरा एक बड़ा बाग भी था। उसी बड़े बाग के एक कोने में एक छोटी-सी झोंपड़ी डाल कर वह बाग की रखवाली करता रहता था।

ठक्कर साहू धनी होने पर भी बड़ा भारी कञ्जूस था। बाग का फल वह खुद कभी नहीं खाता था। उसका एक फल भी कभी किसी को नहीं देता था। बाग के वास्ते उसने कोई नौकर नहीं रखा था। जरूरत पड़ने पर मजदूर लगा देता था। एक दिन फल तोड़ने के लिए उस ने कुछ मजदूरों को लगा रखा था। फलों से लदी डालियों से फल तोड़-तोड़ कर मजदूर टोकरों में रख रहे थे। ठक्कर साहू बड़ी सावधानी से तोड़े हुए फलों को गिनता और उनके दाम का हिसाब लगाता जाता था।

इतने में दूर पर फल तोड़ते हुए एक मजदूर ने एक फल उठाया और दाँतों से कुतरने लगा। यह देखते ही ठक्कर साहू बोल उठा-"अरे, फल खाते हो ! लेकिन उस फल का दाम याद रखना - एक रूपया है और तुम्हारी मजूरी ठहरी है सिर्फ आठ आना। इसलिए कल भी आकर तुम्हें यहाँ काम करना होगा।"

यह सुनकर मजदूर दङ्ग रह गया। एक तो सुबह से वह फल तोड़ रहा था। देख-देख कर मन मचल उठा और उसने एक फल मुँह से लगा लिया। इसके लिए वह एक रुपया कीमत माँगता है ! यह सोच कर वह गुस्से से तिलमिला उठा। बस, ठक्कर साहू और मजदूर में चख चख शुरू हो गई। धीरे-धीरे गाली-गलौज, उसके बाद हाथा-पाई



नौबत आ गई। दो-चार थप्पड़ खाने के बाद बिगड़ कर मजदूर ने उस गुल-थुल साहू की खूब मरम्मत कर दी।

तब से ठक्कर साहू ने पेड़ों से फल तुड़वाना ही बन्द कर दिया। लेकिन पके फलों को देख कर जब-तब उसके मुँह में पानी भर आता था। फिर भी अपने मुँह में कभी वह फल नहीं डालता था क्योंकि सोचता था कि फल खा जाने से तो चार-छः आने का घाटा ही हो जाएगा उसे।

इस तरह उस कञ्जूस के दिन बीतने लगे और उसके बाग में तरह तरह के फल पक कर चूने लगे। लेकिन ठक्कर साहू मुँह में पानी भरे उन्हें देखता रह जाता था। अगर कोई पूछ बैठता कि अरे भाई, बगीचे को यों क्यों बिगाड़ रहे हो? तो वह गम्भीर होकर कह उठता-"क्या मुझे मूर्ख समझते हो ? फल तोड़ने के लिए मजदूर लगाता हूँ, तो वे बिना पूछे ही भारी-भारी फल खाने लगाते हैं और जब दाम देने कहता हूँ तो मार-पीट करने लग जाते हैं। फिर मैं पैसे देकर यह आफत क्यों मोल लेता रहूँ?"

एक दिन ठक्कर साहू अपने बाग में चक्कर लगाने को निकला। बाग में कुल कितने पेड़ हैं, उनमें कितने फल वाले हैं कितने फल चू पड़े हैं और कितने चुने पर हैं-- सब का हिसाब लगाने लगा।

यों ठक्कर साहू बाग में घूम रहा था कि सुरीली आवाज से गाता हुआ एक पञ्छी उसे दीख पड़ा। वह पञ्छी गौरेय्या के बराबर ही छोटा था। लेकिन उसकी पूँछ में सतरङ्गी इन्द्र-धनुष के सभी रङ्ग दीख पड़ते थे। वह पञ्छी जब गाने लगता था, तो ठूँठ से भी कोपलें निकल आती थी। उसके मधुर गान को सुन कर ठक्कर साहू बेसुध बन गया। फिर दबे पाँव पीछे से जाकर उसने उस चिड़िए को पकड़ लिया। पकडे जाने पर वह पञ्छी न तो छटपटाया

और न उसने चोञ्च ही चलाई। सिर्फ धीरे से उसने कहा-"अरे भाई ठक्कर साहू, अगर मुझे छोड़ दोगे तो मैं तुम्हें तीन ऐसी बाते बताऊँगा जिनसे तुम्हें बेहद फायदा होगा।"

पञ्छी के मुँह से आदमी को बोली सुनकर ठक्कर साहू घबरा उठा। ढाढस बटोर कर उसने पूछा-"सचमुच फायदे की बात बताओगे?"

फायदे की बात से उसने धन-प्राप्ति का ही अर्थ लिया था।

"हाँ। फायदे की ही बात बताऊँगा।" पञ्छी ने जवाब दिया।

बिना कुछ कहे ही ठक्कर साहू ने पञ्छी को अपनी मुठ्ठी से छोड़ दिया। फायदे की बात सुनते ही उसकी रही-सही बुद्धि भी जाती रही थी।

पञ्छी उड़ कर पास के एक पेड़ पर जा बैठा। ठक्कर साहू कान खोले और मुँह बाए पञ्छी की ओर देख रहा था कि देखें, क्या कहता है ! पञ्छी ने कहा-"पहली बात यह बताता हूँ कि जो चीज नहीं है, उसकी चिन्ता मत करो।"



यह सुन कर ठक्कर साहू ने गुस्से से कहा-"ऐसी छोटी-छोटी नीति की बातें क्या में नहीं जानता! बचपन में मैने ऐसे कितने ही नीति उपदेश पढ़े थे। मैं मूर्ख तो है नहीं।"

पञ्छी ने गम्भीरता से कहा-"सचमुच तुम मूर्ख ही हो। इतनी देर तक तुम मुझे अपनी मुट्ठी में रखे रहे, और यह नहीं देख सके कि मेरे शरीर में एक मन सोना भरा है।"

"एक मन सोना ! अरे रे, मैंने तुम्हें क्यों छोड़ दिया अपनी मुट्ठी से ? कैसा मूर्ख हूँ मैं।" यों पछताने लगा वह ठक्कर साहू। पञ्छी ठठा कर हँसा और पंख फड़फड़ा

कर बोला-"तुम मूर्ख ही नहीं, महामूर्ख हो। गौरय्ये-से छोटे पञ्छी के बदन में एक मन सोना कहाँ से आएगा ? इस पर तुम ने झट कैसे विश्वास कर लिया ? पागल कहीं का।" ठक्कर साहू ने दाँत कटकटाए और भौंहे चढ़ाई। इस पर पञ्छी ने फिर कहा-"अब दूसरी सीख सुनो। दूसरों की बात पर झट विश्वास मत कर लेना।"

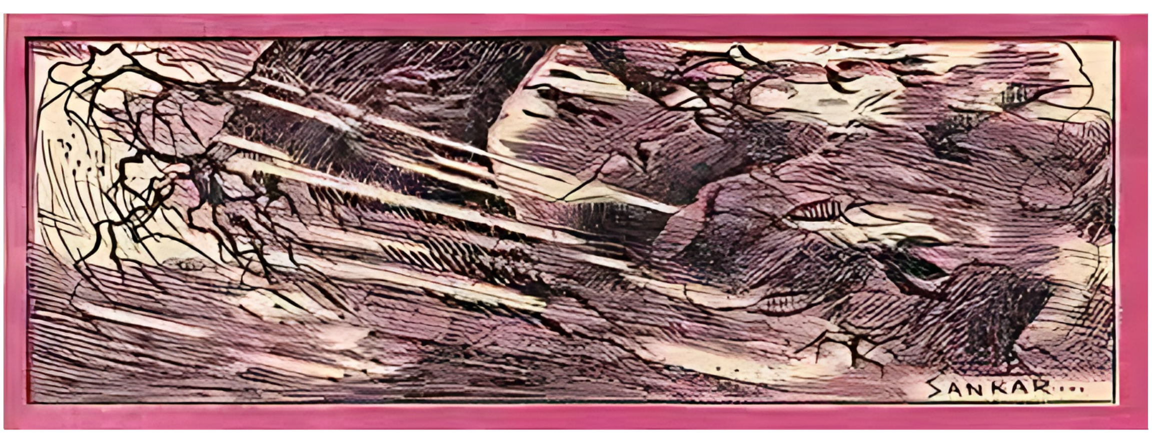
"यह भी तो मैंने बचपन में ही पढ़ा था। इस में नयापन क्या है?" पुतली नचा कर ठक्कर साहू ने जवाब दिया।

"सब कुछ जानने पर भी तुम निरे बेवक़ूफ़ ही रहे साहू जी। अब तीसरी सीख भी सुन ही लो। मुट्ठी में आई लक्ष्मी को छोड़ कर उसे पेड़ की डाल पर मत ढूँढा करो !" यह खुन कर ठक्कर साहू ने पञ्छी के सामने सिर झुका दिया और धीरे से बोला-"सचमुच में मूर्ख हूँ।"

उसी समय उसके बाग में एक बगूला उठा। गिरे पड़े पत्तों, डाली-टहनियों, धूल-झकड़ को बटोरे वह बगूला हर पेड़ को जोरसे झकझोरने लगा। देखते-ही-देखते बड़े-बड़े पेड़ तड़ातड़ टूटने लग गए। ठक्कर साहू ने डर के मारे आँख मूँद लीं। जब आँखें खोलीं तो देखा-जड़ मूल से सब पेड़ उखड़े पड़े हैं। पञ्छी का कहीं पता नहीं है। उसकी झोंपड़ी भी कहीं उड़ गई थी- सिर्फ उसकी नङ्गी दीवारें खड़ी थीं।

लक्ष्मी की उस साहू पर बड़ी कृपा थी। धन-धान्य से वह भरा-पूरा था। लेकिन "न मैंने खाया, न दूसरों को खाने दिया। आखिर सब कुछ तहस-नहस होकर ज़मीन में मिल गया ! सच, मैं भारी मूर्ख हूँ।" यों पछताते ठक्कर साहू के प्राण-पञ्छी भी उड़ गए।

सच, कञ्जूसों की यही हालत होती है।





भारत में राजपूताना राजाओं और वीरों का देश माना जाता है। राजपुत्रों की जन्म भूमि होने के कारण ही उसका नाम राजपूताना पड़ा। किसी समय राजपूताने में छोटे छोटे कई राज्य थे। मेवाड़ राज्य भी उनमें एक था मेवाड़ की राजधानी चितौड़ थी। और उसके अधीवर 'राणा' कहे जाते थे। उन्हीं मेवाड़-पतियों में एक 'रतन राणा' भी था।

रतन राणा को अपने राज-पद से सन्तोष नहीं था। यह मेवाड़ के आस-पास के राजाओं को जीतने, उनसे कर वसूल करने और चक्रवर्ती राजा होने का भी स्वप्न देखने लगा। बस, अपने पास-पड़ोस के सभी छोटे बड़े राजाओं को उसने दूत के द्वारा सन्देशा भेजा-"तुम लोग आकर मेरे पैरों पर पड़ो और नजराना भेंट धरो।"

मेवाड़ की राजधानी चितौड़ से साठ मील दूर पर बूँदी नामक एक गढ़ था। वहाँ का गढ़पति सूरजमल बड़ा ही पराक्रमी योद्धा था। उसके पास भी 'राणा' का पत्र पहुँचा। चितौड़ के अद्भुत 'राणा' का वह पत्र पढ़ते ही बीर सूरजमल, लाठी खाए-साँप की तरह, ऐंठ गया।

राणा का दूत यह देख कर डर गया। और पीछे मुड़ कर देखे बगैर ही वह जिस रास्ते आया था, सीधे उसी रास्ते चितौड़ लौट गया और बूँदी दरबार में जो कुछ हुआ था, सब अपने राणा को साफ-साफ सुना दिया।

दूत की बात सुनकर राणा जल-भुन गया। और तुरन्त बूँदी राज्य पर चढ़ाई करने के लिए सेना को तैयार होने का हुक्म दे दिया। चढ़ाई का यह हुक्म सुनते ही, मन्त्री और सेनापति ने राणा को बहुत

अविनाश कुमारी

तरह से समझाया बुझाया कि बूँदी का नरेश बड़ा बलवान है। बूँदी का किला अटूट है और उस पर चढ़ाई कनरा हँसी-खेल का काम नहीं है।

लेकिन राज-पद के गर्व में अन्धे बने राणा को किसी की बात नहीं जँची। सभी की सलाहें उसने ठुकरा दी और सेना लेकर खुद बूँदी पर चढ़ दौड़ा।

राणा के दरबार में लालजी नामक एक बहादुर सरदार भी था। वह बूँदी राज्य में ही पैदा हुआ था। बूँदी नरेश सूरजमल के साथ दूर का उसका कुछ नाता-रिश्ता भी था। एक दिन किसी बात में मतभेद हो जाने के कारण आत्माभिमानी लालजी अपने विश्वासी सहचरों के साथ मेवाड़ राणा के पास चितौड़ चला आया था।

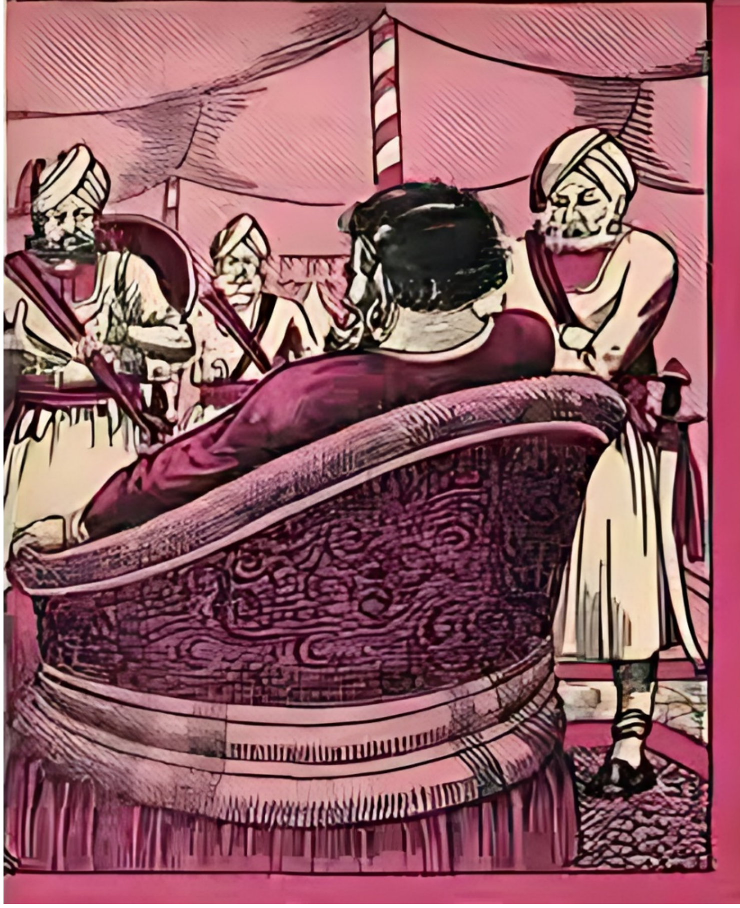
राणा जब बूँदी पर चढ़ाई करने गया, उस समय लालजी चितौड़ में नहीं था। असम साहसी और परम विश्वासी होने के कारण राणा ने उसको एक विद्रोही गाँव से मालगुजारी वसूल कर लाने को भेज दिया था।

राणा ने तो यही सोचा था कि बड़ी वासानी से बूँदी-गढ़ उसके हाथ में



आ जाएगा। लेकिन बूँदी नरेश सूरजमल जैसा बलवान था, बुद्धिमान भी उससे कम नहीं था। चितौड़ का राणा उस पर चढ़ाई करने आ रहा है, यह सुनते ही झटपट उसने उसे नाकामयाब बनाने के सब इन्तजाम कर डाले। साल-भर के लिए खाने-पीने, गोले-बारुद बगैरह सामान जुटा कर उसने बूँदी किले का फाटक बन्द करवा दिया।

रतन राणा उसकी यह चातुरी देख कर बड़ो चिन्ता में पड़ गया। किले के चारों ओर पानी से भरी गहरी खाई को पार कर पहाड़ से ऊँचे किले पर चढ़ना उसके लिए एकदम असम्भव जान पड़ा।



उधर, किले के ऊपर से तीर, ढोके और गोलों की मार से खुले मैदान में खड़ी उसकी सेना धड़ाधड़ तहस-नहस होने लग गई। ऐसी हालत में उद्दण्ड राणा ने प्रण किया-"जब तक बूँदी-गढ़ को वश में नहीं कर लूँगा, तब तक भोजन नहीं करूँगा।"

परन्तु प्रण कर लेने से ही तो किले पर अधिकार नहीं हो जाता है! उससे न परिस्थितियों मैं कोई परिवर्तन हुआ न किले पर अधिकार हुआ और न राणा ने भोजन किया।

मन्त्री और प्रमुख राज-पुरुषों ने अनेक प्रकार से राणा को समझाया, पर दुराग्रही राणा ने अपना हठ नहीं छोड़ा और बगैर भोजन किए बैठा रहा। जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, राणा क्षीण-से-क्षीणतर होने लगा। आखिर राज्य का हर आदमी इस चिन्ता में पड़ गया कि राणा का हठ कैसे छुड़ाया जाय।

ऐसे समय मुख्य मन्त्री को एक उपाय सूझ गया। उसने राणा के पास जाकर निवेदन किया- "महाराज, सभी को मालूम है कि श्रीमान् अपनी बात के धनी हैं और अपना बूँदी विजय बाला प्रण प्राण रहते नहीं छोड़ सकते हैं। श्रीमान् की यह टेक भी नहीं टूटेगी। इसके लिए मैंने एक उपाय सोच लिया है। अब हम लोग चितौड़ लौट चलें। वहाँ जाकर बूँदी नाम का एक छोटा गढ़ बनवा लें और श्रीमान् सेना लेकर उसे तोड़ डालें। बस, श्रीमान् की प्रतिज्ञा पूरी हो जाएगी।

यह उपाय भूख से ढीले पड़े राणा को पसन्द पड़ गया। लेकिन झेंप के कारण कुछ भी जवाब न देकर उसने सेना को चितौड़ लौट चटने का हुक्म दे दिया। सब लोग अपना-सा मुँह लेकर चितौड़ लौटे।

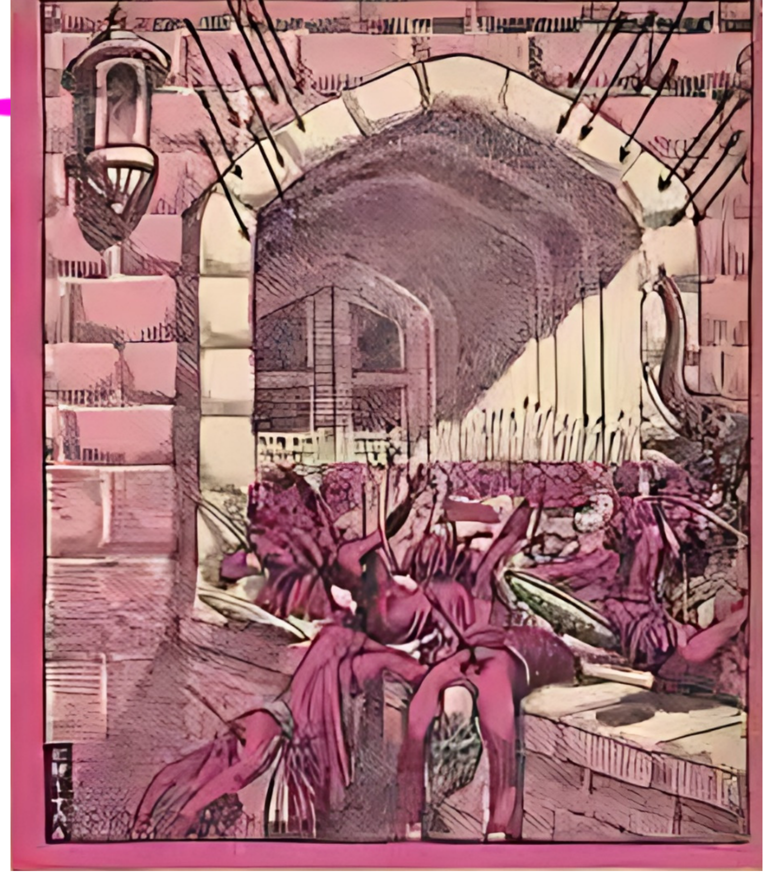
मन्त्री की सलाह से झट-पट एक किला बनवाया गया और उसके सिंहद्वार पर अङ्कित

कर दिया गया-"बूँदी-गढ़"। मन्त्री ने कहा-"रात भर इस गढ़ को छोड़ दीजिए। सवेरे आकर सबों के सामने इसे तोड़ डालिएगा।"

इधर लालजी, अपना काम पूरा करके, उसी रात को चितौड़ वापस आ गया था। एक दम नए किले को देख कर विस्मय से उसने पूछा-"यह सब क्या है भाई?" लोगों के मुँह से सब कुछ सुन कर वह चिल्ला उठा-"तब तो खूब है राणा का राज्य !" उधर सवेरा होते ही राणा सेनापतियों और कुछ हाथी घोड़ों के साथ उस नकली किले पर चढ़ आया और अपनी सेना को ललकार कर कहने लगा-"बढ़ जाओ बीरो, इस दुर्ग पर और इसे पलभर में तहस-नहस कर डालो।"

अत्यन्त उत्साह के साथ 'राणा' के सैनिक-गण मेवाड़ेश्वर का जयघोष करते किले पर चढ़ने लगे। लेकिन, जाने कहाँ से एका-एक तीरों की भयङ्कर बर्षा होने लगी और राणा के सिपाही घायल हो-हो कर औंधे सिर खाई में गिरने लगे।

राजा का सेनापति यह अनहोनी बात देख कर दङ्ग रह गया। वह सोचने लग गया-"कौन है किले के अन्दर जो इस तरह उत्साह से चढ़ते हमारे



सिपाहियों की हत्या कर रहा है?" उसने हुक्म दिया-"किले का फाटक तोड़ दो और सब लोग अन्दर घुस जाओ। हुक्म तो उसने दे दिया, लेकिन पत्थर के बने उस फाटक को खोलना क्या आसान काम था ? क्या इन थोड़े-से सिपाहियों के बूते की बात थी वह ?

जान हथेली पर लेकर राणा के सैनिक बढ़े और गिरते-पड़ते, मरते-कटते, किसी तरह उन्होंने किले के फाटक को खोला। लेकिन सब से बड़ा आश्चर्य तो यह हुआ कि फाटक खुल जाने पर भी वे अन्दर जाने से लाचार थे। बात यह थी कि एक सौ बहादुर

सहचरों के साथ लालजी दरवाजा रोके खड़ा था। लालजी को देखते ही सेनापति के तन- बदन में आग लग गई। उसने गरज कर कहा-"वाह रे बहादुर वीर, क्या चीटियों के पर निकल आए हैं ?"

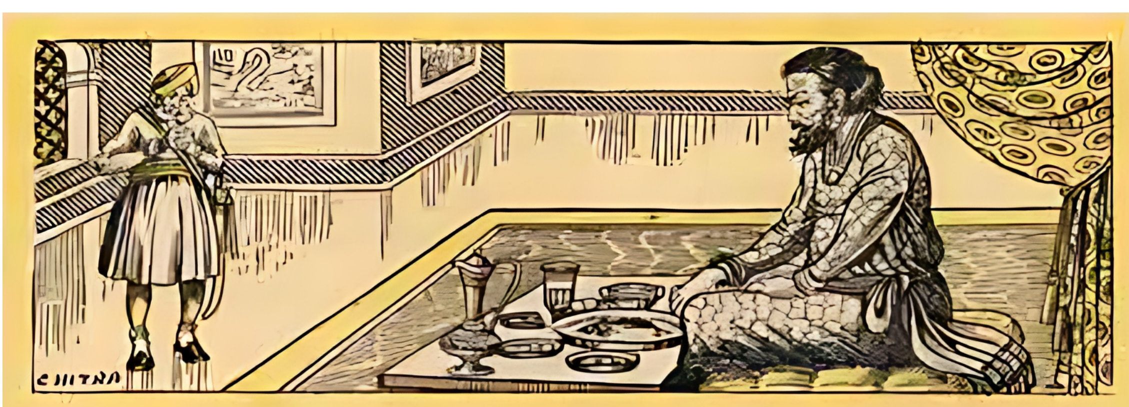
"मौत से डरने वाले राणा के बड़े सेनापति होगे। हमें वह डर नहीं।" बूँदी गढ़ से विजय पताका उड़ा कर लौट आए और यहाँ नकली किला बनवा कर लगे बहादुरी दिखाने! शाबाश !!.... तुम लोगों में पौरुष पराक्रम होता तो जाकर बूँदी-गढ़ को जीत आते ! यह क्या कालिख लगा रहे हो, बीराधमों ?"

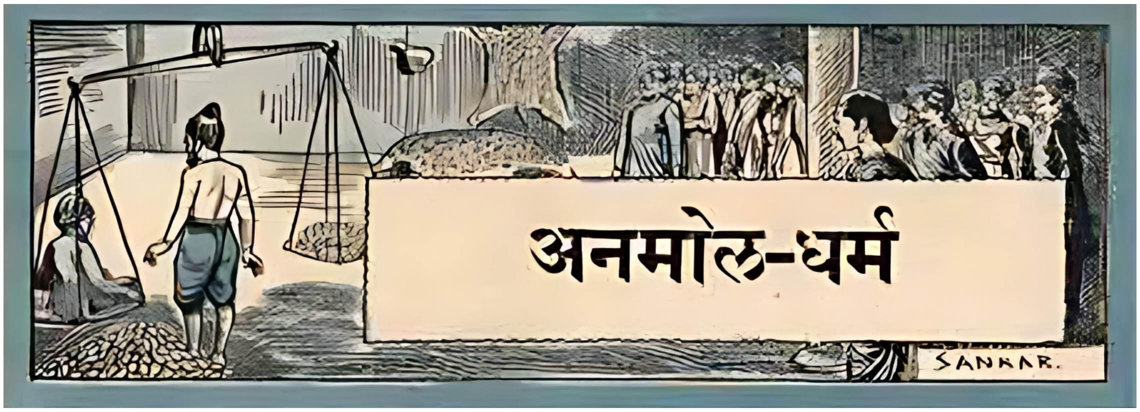
यह सुनते ही राणा के लोग जड़वत् हो गए। लालजी फिर गरज उठा- "जानते हो, मैं बूँदी निवासी हूँ। स्वप्न में भी बूँदी का अपमान नहीं सह सकता हूँ। इसीलिए मैं इस किले में घुस आया हूँ और इसकी रक्षा करने का सङ्कल्प कर लिया है। आओ जिसे आने का शौक हो। और जरा चूँदी वाले कैसे बहादुर होते हैं, उनके भी जौहर देख लो।" ऐसा कह कर लालजी मूँछों पर ताव देता ताल ठोंकने लगा।

लालजी के सहचरों के साथ मेवाड़ी-सेना की जम कर मुठभेड़ हुई। लालजी के सहचर संख्या में थोड़े थे, पर उन्होंने असम साहस से सामना किया और राणा के अनेकों सिपाहियों को, बात की बात में धरती पर सुला दिया।

किले पर अधिकार हो गया, यह सोच कर राणा थाली से कौर उठाना ही चाहता था, कि उसे लालजी की मुटभेड़ की बातें मालूम हुई। हाथ-का-कौर थाली में आ गिरा। वह बुरी तरह अपनी गलती पर पछताने और अपने आप को बार-बार कोसने लगा।

नकली किला होने पर भी देशभक्त लालजी से बूँदी का अपमान सहन नहीं हुआ।





बहुत पुरानी कहानी है। किसी गाँव में एक गरीब आदमी रहता था। उसका नाम था भगवान महतो। गाँव में मेहनत-मजूरी करके अपना और अपने परिवार का गुजर-बसर करता था। परिवार उसका बहुत बड़ा था जैसे सतपुतिया तुरई की बाड़ी ही हो।

आमदनी का दूसरा जरिया तो कुछ था नहीं। इसलिए रात-दिन बाल-बच्चों के पालन-पोषण करने की भयङ्कर चिन्ता में वह डूबा रहता था। कभी-कभी घर में कुछ नहीं रहने पर सारे परिवार को भूखा ही सो जाना पड़ता था। गरीबी की इस बदतर हालत में वे असहाय पति-पत्नी दिन रात भगवान की प्रार्थना करते रहते थे कि कैसे यह सङ्कट की जिन्दगी बिताई जाय। खुद भूखों रहा जा सकता है, पर बाल-बच्चों को तड़पते कैसे देखा जाय?

इसी समय दूर के कैलासपुरी गाँव में, गाड़ियों पर रुपया लाद कर एक सन्यासी आया। वह सन्यासी एक अजीब आदमी था। कहीं भी किसी धर्मात्मा को देखता तो वह उसके पुण्य कर्मों को काँटे पर रुपयों से तौल लेता था और सारी रकम उसे देकर विदा कर देता था।

सन्यासी की यह अद्‌भुत बात बिजली की तरह चारों ओर फैली और दूर-दूर के गाँवों से भी अनेक लोग आने और अपने पुण्यों का मोल ले जाने लगे।

धीरे-धीरे यह बात भगवान की औरत के कान में भी पड़ी। सुनते ही वह अपने पति के पास पहुँची और धीरे से बोली-"तुम भी क्यों न चले जाते हो उस महात्मा के पास ?"

लेकिन भगवान ने उदास होकर कहा -"अरे, कौड़ी कौड़ी के मोहताज़ हम बज्र-दरिद्रों

को इतना पुण्य कहाँ से आएगा जो तोला जा सके ? जानती हो न पुण्य दान-धर्म करने से होता है। और दान-धर्म धनी लोगों से ही हो सकता है; यह भी तुम खूब जानती हो। फिर हम फिजूल बालू से तेल निकालने की कोशिश क्यों करें ?"

लेकिन स्त्री ने हठपूर्वक कहा- "इतनी बड़ी उम्र हो गई है तुम्हारी। क्या कोई छोटा-सा भी धर्म-कार्य नहीं किया होगा तुमने ? जरा दिमाग पर जोर देकर याद करो। न जाने कितने लोग अपने धर्म को बेच कर सन्यासी के हाथ से सैकड़ों-हजारों रुपए ढो-ढो कर ला रहे हैं। और तुम यों हाथ-पर-हाथ घरे बैठे हो। तुम भी जाओ और पुण्य बेच कर कुछ ले आओ जिससे हमारे बाल-बचे भूखों मरने से तो बचे।"

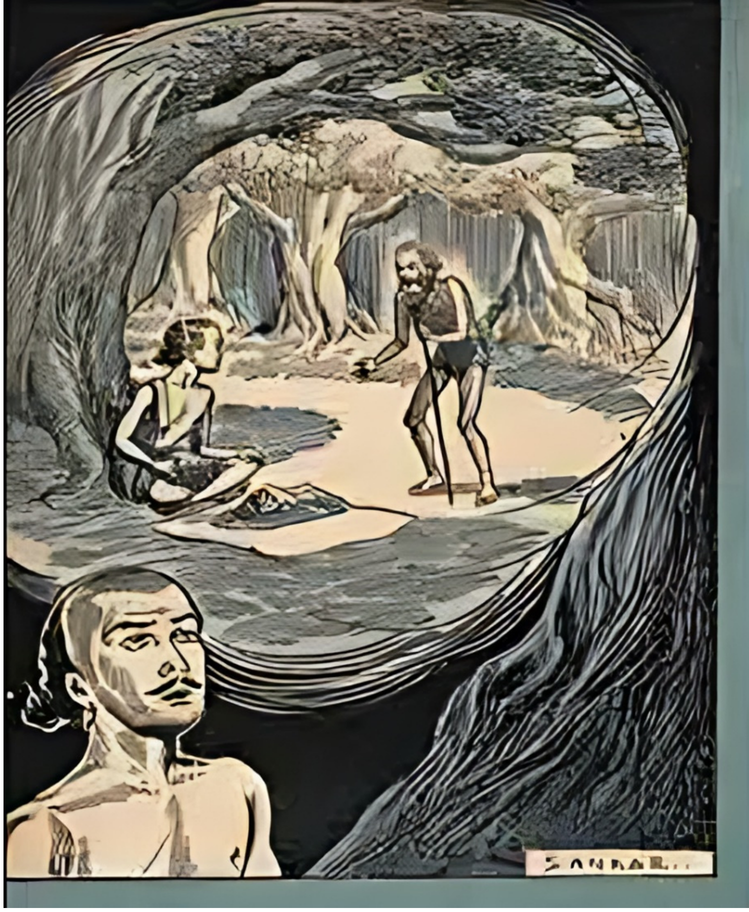
भगवान महतो से स्त्री की रोज-रोज की ये बातें न सही गई। एक दिन ऊब कर वह उठा और अङ्गोछे में कुछ कलेवा बाँध कर सन्यासी के पास चल पड़ा।

रास्ते में ऐसे बहुत से लोग उसे दिखाई पड़े, जो अपने पुण्य कार्यों की याद करते और उनकी कीमत का अन्दाज लगाते दौड़ते चले जा



रहे थे। कुछ लोग पालकियों पर चढ़े थे, तो कुछ लोग घोड़ों पर सवार थे और बहुत से लोग बैलगाड़ियों में लदे-फदे टन टन करते भागे जा रहे थे।

यह सब देख-सुन कर भगवान को भी कुछ कुतूहल हुआ। "कहीं किसी भी कोने में, मेरा एक भी पुण्य है क्या?" बड़ी गम्भीरता से वह उधेड़-बुन में पड़ गया। "अरे, सन्यासी को सही जवाब न देने पर, कहीं अपना सा मुँह लेकर लौटना न पड़े मुझे !" कई बार उसे यह घोर निराशा हो आई। फिर भी वह हताश न हुआ और पैर आगे ही बढ़ता गया।



जङ्ग्ल-पहाड़ों से चलते-चलते यात्री दल एक बहुत बड़े बरगद के पेड़ के पास पहुँचे। उस बरगद को देखते ही भगवान को कुछ याद आ गया और देखते-देखते उसका उदास मुँह खिल उठा। क्यों? उसका भी एक कारण था। वह भी सुनो--

कुछ साल पहले एक दिन इसी विशाल पेड़ के पास से होकर उसे कहीं जाना पड़ा था। खूब याद है-- ठीक इसी पेड़ के नीचे आराम करने के लिए वह बैठ गया था। उस समय भी वह फैलासपुरी ही जा रहा था। तब भी वह गरीब ही था। लेकिन हालत ऐसी बदतर न थी।

भगवान की औरत पड़ोसिन के घर से आटा पैंचा माँग लाई और पति के लिए कलेवा बना दिया था। कलेवे की गठरी हाथ में उठाए, वह चल पड़ा था। चलते-चलते दोपहर के वक्त वह इसी पेड़ के पास पहुँचा था।

सवेरे से चलते-चलते थक जाने के कारण उसे भूख-प्यास खूब लग रही थी। छाया में बैठ गया। कुछ सुस्ताने के बाद उसने उतावली से अपने कलेवे की गठरी खोली और देख भाल कर खाने की तैयारी करने लगा। ठीक जब वह कौर उठा रहा था कि पास ही उसे एक अत्यन्त करुण वाणी सुनाई पड़ी-"ओ भाग्यवान भाई, तीन दिन हो गए हैं मुँह में एक कौर डाले हुए ! एक कौर दे दो, भाई !"

भगवान महतो ने अचरज से सिर उठा कर देखा कि कौन बोल रहा है? नजर उठाते ही एक सौ साल का बूढ़ा आकर उसके सामने लाठी टेक कर खड़ा हो गया। उसे देख कर भगवान का दिल पानी-पानी हो गया। फूँक देने से उड़ जाए ऐसी थी उसकी हालत।

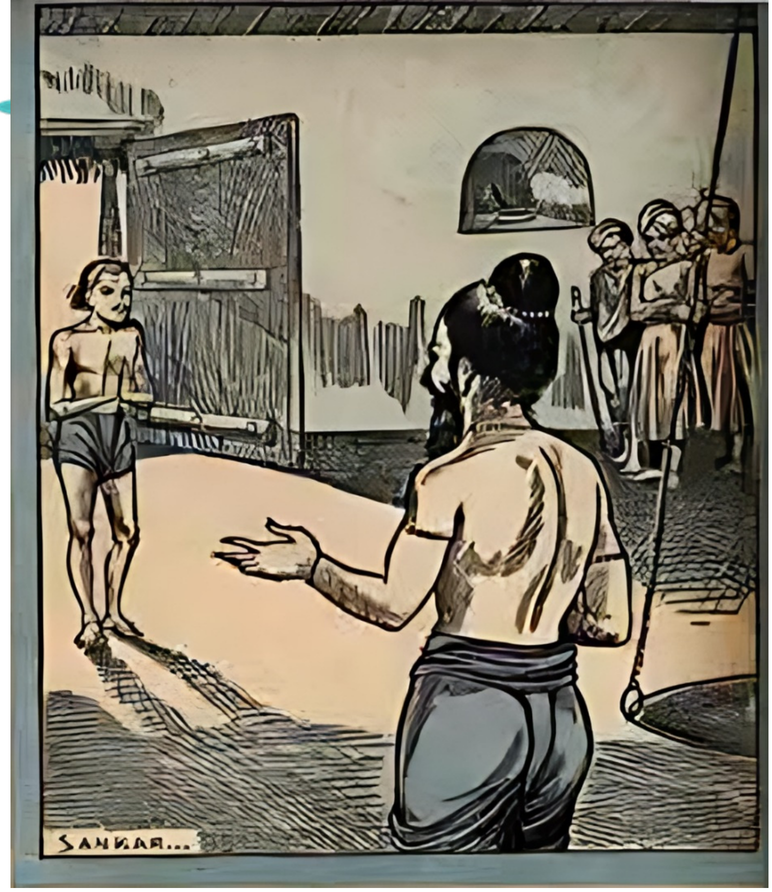
पल-भर भी इधर उधर किए बिना भगवान उठा और बुढ़े के पास पहुँच गया। फिर बड़ी सावधानी से सम्हालते हुए उसने उसे अपनी

जगह पर ला बिठाया। फिर को कलेवा खुद खाने जा रहा था, वह गठरी ही उठाकर उसने उसके आगे कर दी और पेट भर खाने को कहा।

बूढ़ा सङ्कोच में पड़ गया। लेकन भगवान ने जोरदार आग्रह किया। आखिर भूखा तो वह था ही। किसी तरह खाने लग गया। आधी गठरी खाली कर जाने के बाद, डकार लेकर, बूढ़ा उठा और भगवान महतो को अनेक आशीर्वाद देकर अपनी राह चला गया।

आज इस पेड़ को देखते ही, वे सब भूली बातें, एकाएक भगवान को याद आ गई। इसी से उसका मुँह खिल उठा था। आखिर एक पुण्य कार्य तो उसने किया है, यह सोच कर वह उमङ्ग से भर गया। अब जाकर उसके मन को कुछ ढाढस बँधा।

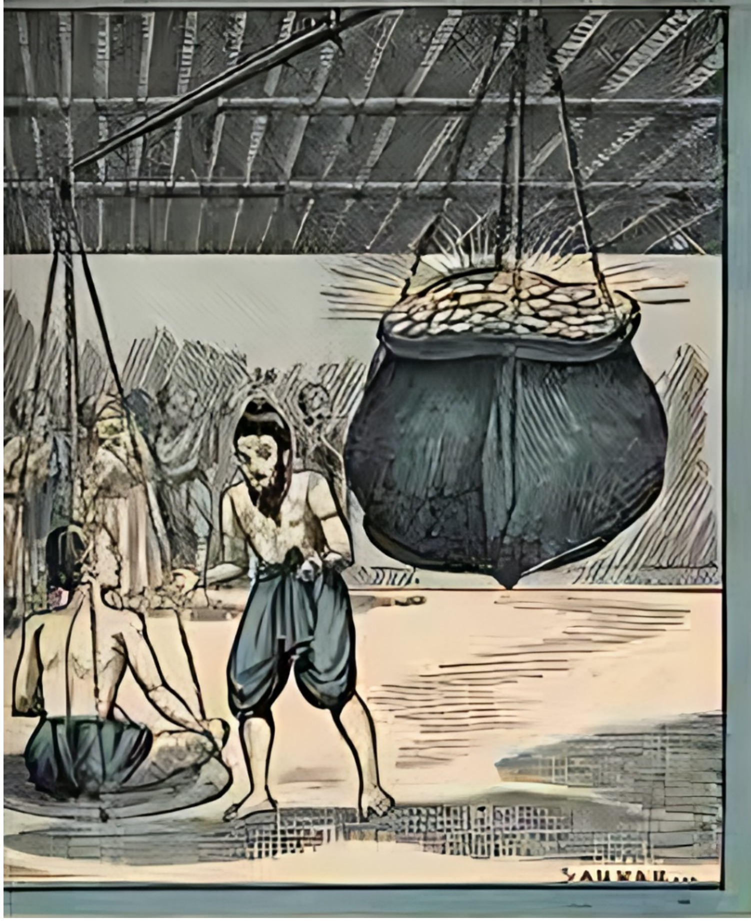
इस ढाढ़स से वह तनकर उठा और तेजी से पैर बढ़ा कर, कैलासपुरी जा पहुँचा। वहाँ-- कैलासपुरी में धर्मात्मा सन्यासी जहाँ रहता था, उस मकान में लोगों की रेल-पेल मची हुई थी। सन्यासी के सामने एक बड़ा काँटा लटक रहा था। धर्मात्मा लोग आ आकर उसके एक पलड़े पर बैठ



जाते थे। दूसरे पकड़े पर सन्यासी रुपए रखता जाता था। यों जो जितना पुण्यशाली होता था, उसे उतनी रकम मिल जाती थी। रकम हाथ लगते ही, गठरी बाँध कर, लोग अपने घर की ओर चल देते थे। उन धर्मात्माओं को देख कर भगवान को अत्यन्त लज्जा हो आई।

उसे बड़ी चिन्ता होने लगी कि अपने उस छोटे-से पुण्य कार्य की बात वह सन्यासी के सामने कैसे कहेगा ! और अगर कहीं उसका यह काम 'धर्म' की गिनती में नहीं आया, तब तो वह लज्जा में डूब ही जाएगा न! यों आगा-पीछा करता वह एक कोने में दुबक कर बैठ गया।

दीन भगवान को यों दुबका देख कर



सन्यासी ने पूछा-"भाई, तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आए हो ?"

भगवान संकुचित होकर कहने लगा-"महाराज, गरीबी की मार न सह कर आपके पास दौड़ पड़ा हूँ कि कुछ-न-कुछ कह कर कुछ रकम ले जाऊँ! लेकिन सच तो यह है कि, मैंने कोई बड़ा पुण्य कार्य नहीं किया है।" सन्यासी ने उसे धीरज देकर कहा-"अरे भाई, धर्म-कार्य में गरीब और अमीर का कोई भेद नहीं होता। थोड़ा और बहुत का भी भेद नहीं होता। इसलिए तुम निःसङ्कोच होकर अपनी बात कह डालो।"

सन्यासी की आज्ञा से भगवान महतो काँटे के पलड़े पर जा बैठा। फिर सन्यासी ने उसे अपने पुण्य कार्य बताने का आदेश दिया। जैसे ही भगवान ने अपनी याद से बूढ़े की बात कही कि वहाँ जमा हुए सब लोग ठठा कर हँस पड़े।

लोगों को शान्त करके सन्यासी पलड़े पर रकम चढ़ने लगा। चढ़ता गया, चढ़ता गया करीब बोरे-भर रुपया वह चढ़ा गया। लेकिन गरीब भगवान जिस पलड़े पर बैठा था, वह जरा भी नहीं झुका; ज्यों का-यों बना रह गया। फिर सन्यासी बोरे-पर-बोरे पलड़े पर डालता गया, पर वह पलड़ा हठ करके खड़ा रहा ! यह देख कर सन्यासी दङ्ग रह गया। धर्मात्मा लोग चकित रह गए। भगवान महतो तो मूढ़ ही बन गया था। समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था।

सन्यासी के पास जो धन राशि जमा थी, वह सब पलड़े पर चढ़ गई। यह देख कर उसने अत्यन्त नम्रता से कहा-"धर्मात्मा ! तुमने जो पुण्य किया है, उसका इतना महत्व है कि उसका कोई मोल नहीं हो सकता। उस पुण्य का मोल चुकाना मेरे बूते के बाहर की बात हो गई हैं। मुझे क्षमा कर

दो। मेरे पास जो धन बच गया है, उसे ले जाओ और उतने से ही सन्तोष कर लो !" यह सुन कर भगवान पलड़े पर से कूद पड़ा और हाथ जोड़ कर बोला-"महात्मा, क्या सचमुच मेरा पुण्य इतना बड़ा है ? क्या वह इतना अनमोल भी है ? तो मैं इस 'लाल' को कौड़ियों से नहीं बदलूँगा। आप अपना धन अपने पास रखिए और जो लेना चाहें, उन्हें दीजिए। मैं जता हूँ।" कह कर वह चल पड़ा। वहाँ जो धनवान और पुण्यवान जमा थे सबों ने उस गरीब आदमी का देख कर दाँतों तले जीभ दबा दी और पुण्य खरीदने के लिए आए हुए उस सन्यासी के आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं था। वह जाते हुए भगवान के पास दौड़ गया और कहने लगा-"तुम पुण्यात्मा ही नहीं, महान त्यागी भी हो। आज तुमने जो यह अनुपम त्याग किया है, उससे तुम्हारा पुण्य दुगुना हो गया है। तुमने मेरे पास कुछ नहीं लिया, लेकिन याद रखो किसी-न-किसी रूप में तुम्हारे पुण्य का फल तुम्हें मिल कर ही रहेगा। यह भगवान का फैसला है।"

कह कर वह सन्यासी अन्तर्धान हो गया। कुछ दिन के बाद भगवान अपने घर पहुँचा। जाते ही उसने देखा कि उसका घर एक राज महल के ऐश्वर्य से भरा-पूरा खिल-खिला रहा है। पूछने पर मालूम हुआ कि उसका निःसन्तान लखपती चाचा मरते समय अपने दरिद्र, परन्तु धर्मात्मा भतीजे के नाम अपनी सारी सम्पत्ति लिख गया है। भगवान चकित रह गया। क्योंकि जो मक्खीचूस चाचा ताजिन्दगी उससे नफरत करता रहा, घोर-से-घोर सङ्कट में भी कभी उलट कर उसकी तरफ देखा नहीं, उसका पत्थर से भी कड़ा दिल यो एकाएक कैसे पिघल पड़ा ? फिर उसे सन्यासी की बात याद आ गई।





रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र...?